भारतीय ग्रन्थमाला, संख्या–१०

# निर्वाचन पद्धति

[ 'निर्वाचन नियम' का परिवर्तित और संशोधित संस्करण ]

लेखक

दयाशंकर दुबे

एम. ए., एल-एल. बी., अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्व विद्यालय

और

भगवानदास केला

रचयिता, भारतीय शासन, भारतीय अर्थशास्त्र, अपराध चिकित्सा, नागरिक शिक्षा आदि ।

प्रकाशक

व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन

दूसरा संस्करण } १९३८ { मूल्य नौ आने

प्रकाशक :—
भगवानदास केला
व्यवस्थापक,
भारतीय ग्रन्थमाला,
बृन्दाबन।

मुद्रक :—
त्रिभुवननाथ शर्मा,
जमुना प्रिन्टिङ्ग वर्क्स,
मथुरा।

# निवेदन

इस समय ब्रिटिश भारत के लगभग साढ़े तीन करोड़ पुरुष स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त है, और इस मताधिकार के बढ़ाये जाने की, अर्थात् बालिग मताधिकार दिये जाने की मांग है। देशी राज्यों में भी निर्वाचित प्रतिनिधियों की व्यवस्थापक सभाएँ संगठित की जाने के लिए आन्दोलन हो रहा है। राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस का संगठन भी निर्वाचन पद्धति से होता है। परन्तु देश की राष्ट्र-भाषा हिन्दी में निर्वाचन सम्बन्धी पुस्तकें कितनी हैं ?

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 'निर्वाचन नियम' नाम से, सन् १६२६ ई० में हुआ था। उस समय यह हिन्दी में अपने विषय की सर्व-प्रथम और एक-मात्र पुस्तक थी। विशेष खेद तो यह है कि बारह वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी इस विषय की कोई दूसरी हिन्दी पुस्तक हमारे देखने में नहीं आयी। अतः यथेष्ट साधन न होने पर भी हम इस पुस्तक का दूसरा संस्करण छपाने का दुस्साहस कर रहे हैं। क्या हम आशा करें कि उत्तरदायी प्रतिनिधि-मूलक शासन पद्धति तथा राजनैतिक जागृति के प्रेमी इसके प्रचार में हमारा हाथ बटाना अपना कर्तव्य समझेंगे ?

इस संस्करण में नित्य बदलने वाले निर्वाचन-नियमों को विस्तार से न देकर सिद्धान्तों तथा परिस्थिति और प्रणाली का ही विशेष विचार

आदि की अनेक कथाएं और दृष्टान्त सुना-सुना कर वे दुख के दिन काटने में आपने हमारी कितनी सहायता की। आप मेरी माता जी के लिए पुत्रवत्, और मेरे लिए बड़े भाई की तरह रहे।

मेरा गांव में रहना छूट गया, और आप भी वहां न रहे तो भी आपको हमारे दुख-सुख की बातें जानने और सदैव सत्परामर्श देने की चिन्ता रही। बाबैल गांव मेरे लिए तीर्थ है, परन्तु यदि वहां जाने पर आपके निवास-स्थान किरमच ( थानेश्वर ) पहुंच कर आपके दर्शन न कर सकूं तो मैं अपनी तीर्थ-यात्रा अधूरी समझता हूं।

आह! चिरकाल तक हमने गांवों तथा ग्राम-शिक्षक को भुलाकर राष्ट्रोत्थान की बातें बनायीं। अब संसार-वन्द्य महात्मा गांधी ने हमारा वह मिथ्या स्वप्न दूर कर दिया है; और हमें ग्राम-प्रस्थी, और ग्राम-सेवक होने का आदेश किया है। हम इसे व्यवहार में लायें तभी हमारा वास्तविक हित-साधन होगा।

पूज्यवर! मैं आपका कितना ऋणी हूं, और यह भेंट कितनी क्षुद्र है! जो हो, मैं आप की कृपा-दृष्टि और आशीर्वाद का अभिलाषी हूं।

विनीत

भगवानदास केला

# विषय सूची

# निर्वाचन पद्धति

## * पहिला अध्याय *.

### * विषय प्रवेश *

'आधुनिक राज्यों की शक्ति का आधार उनकी निर्वाचन पद्धति में है।'

आधुनिक सभ्य और उन्नत शासन पद्धतियों में निर्वाचन का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। प्रत्येक शासन पद्धति में एक मुख्य विचारणीय प्रश्न यह रहता है कि उसमें निर्वाचन प्रथा का उपयोग कहाँ तक, तथा किस प्रकार किया जाता है। राजनीति के विद्यार्थियों के लिए ही नहीं, सर्व साधारण नागरिकों को भी निर्वाचन सम्बन्धी भिन्न भिन्न विषयों का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

**शासन पद्धतियों के स्थूल भेद**—इन विषयों पर विचार करने के लिए यह जान लेना चाहिए कि शासन पद्धतियों के मुख्य भेद क्या हैं, और उनमें से किसमें निर्वाचन का अधिक उपयोग होता है। स्थूल रूप से शासन पद्धतियाँ चार प्रकार की होती हैं; संसार में प्रचलित अनेक प्रकार की शासन पद्धतियाँ इनके ही भेद उपभेद हैं।

१—'आटोक्रेसी' अर्थात् स्वेच्छाचारी तन्त्र; इसमें एक व्यक्ति शासक होता है, वह मनमाने ढंग से शासन करता है। उस पर किसी का अंकुश या नियंत्रण नहीं होता।

२—'एरिस्टाक्रेसो' अर्थात् कुलीन तंत्र, इसमें शासन सूत्र कुछ इने-गिने धनी-मानी, खानदानी आदमियों के हाथ में रहता है।

३—'ब्यूरोक्रेसी' अर्थात् कर्मचारी तन्त्र या नौकरशाही। इसमें प्रधान शासक प्रजा से भिन्न देश या जाति का तो होता ही है, पर वह भी मुख्य कर्ता-धर्ता नहीं होता; उसकी ओर से कुछ नौकरों द्वारा राज्य चलाया जाता है।

इन तीनों प्रकार की शासन पद्धतियों का क्रमशः लोप होता जारहा है, अथवा यह कहना अधिक सत्य होगा कि इनका विशुद्ध प्राचीन स्वरूप अब बहुत बदल गया है, और बदलता जा रहा है।

४—'डेमोक्रेसी' अर्थात् लोकतन्त्र या प्रजातन्त्र। इसमें जनता स्वयं अपना शासन करती है। आज कल इस प्रणाली का प्रचार बढ़ता जारहा है। इसमें (प्रतिनिधियों द्वारा) जनता कर वसूल करने, सरकारी आय को व्यय करने, क़ानून बनाने तथा शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी नियम निर्माण करने का कार्य करती है। वह कहीं-कहीं प्रधान शासकों को स्वयं चुनती या नियुक्त करती है। इसी का नाम लोकतन्त्र, प्रजातन्त्र या स्वराज्य है।

अब विचारणीय विषय यह है कि उपर्युक्त कार्यों में, विशेषतया क़ानून बनाने में नागरिकों का अधिकार होने की क्या आवश्यकता है, तथा वे इस अधिकार का उपयोग किस प्रकार और कहाँ तक कर सकते हैं। इन्हीं प्रश्नों पर विचार करने से निर्वाचन का महत्व स्पष्ट हो जायगा।

**नागरिक, और नियम-निर्माण**—प्रत्येक राज्य में कुछ नियम या क़ानून होते हैं। इनका उद्देश्य यह होता है कि नागरिकों की उन्नति और सुख-शान्ति की वृद्धि होती रहे। इनसे पारस्परिक व्यवहार की सुविधा होती है। परन्तु क़ानूनों का उपयोग तभी है, जब सब नागरिक उन्हें मान्य करें तथा भली भाँति उनका पालन करें। नागरिक राज्य के क़ानूनों का पालन इस लिए करते हैं कि (१) क़ानून पालन न करने की दशा में उन्हें राज्य की ओर से दण्ड मिलता है, (२) क़ानून नागरिकों के हितार्थ बनाये जाते हैं, और (३) क़ानून बनाने में नागरिकों का हाथ होता है। इनमें से प्रथम कारण का प्रभाव विशेष स्थायी नहीं होता, केवल भय से कोई क़ानून बहुत अधिक समय तक, बहुत से नागरिकों द्वारा पालन नहीं किया जाता। दण्ड का भय क़ानून पालन में सहायक अवश्य होता है, परन्तु यदि नागरिकों को यह विदित हो कि क़ानून उनके लिए हितकर नहीं है, तो वे दण्ड की जोखम उठा कर भी क़ानून भंग करने का साहस करने लगते हैं। अच्छा; क्या नागरिक केवल इस लिए क़ानूनों को मान्य करते हैं कि वे उनके लिए हितकर हैं ? नहीं, सदैव ऐसा नहीं होता। अनेक

दशाओं में बहुत से नागरिकों को क़ानूनों की उपयोगिता स्पष्ट ज्ञात नहीं होती, अथवा हर समय स्मरण नहीं रहती। प्रायः नागरिकों को क़ानून का पालन करने की प्रेरणा विशेषतया इस लिए होती है कि क़ानूनों के बनाने में उनका भी हाथ होता है। अपनी बनायी हुई चीज़ का आदर-मान करना, उसकी अवहेलना न करना मनुष्य का स्वभाव है। इस लिए अपने बनाए क़ानून कुछ कठोर होते हुए भी पालन किए जाते हैं; इसके विपरीत दूसरों के बनाए क़ानून आशंका की दृष्टि से देखे जाते हैं। किसी राज्य में क़ानून बनाने में नागरिकों का हाथ जितना अधिक होता है, उतनी ही वहां नागरिकों द्वारा क़ानून पालन की आशा अधिक होती है। अतएव प्रत्येक सभ्य और शिक्षित राज्य में यह आवश्यक समझा जाता है कि वहां के क़ानून अधिक से अधिक नागरिकों द्वारा बनाये जायँ।

**प्रतिनिधि-प्रणाली का आविष्कार**—राज्य के सब नागरिकों के लिए कानून बनाने में भाग लेना न तो सम्भव ही है, और न उपयोगी ही। आज कल तो राज्य बड़े बड़े होने लग गये हैं; उनका विस्तार सैकड़ों ही नहीं, हज़ारों वर्ग मील तक और जन-संख्या लाखों ही नहीं, करोड़ों तक होती है। ऐसी दशा में समस्त नागरिकों का क़ानून बनाने के लिए किसी एक स्थान पर एकत्र होना और शान्ति-पूर्वक विचार करके क़ानून बनाना कितना कठिन है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। परन्तु यदि राज्य छोटा ही हो, उसका विस्तार और जन-संख्या

बहुत सीमित हो तो भी समस्त नागरिकों का क़ानून बनाने के लिए एकत्रित होना सम्भव नहीं है। प्रत्येक स्थान के निवासियों में बच्चों और नाबालिग़ों की खासी संख्या होती है; फिर, कुछ आदमी वृद्ध, रोगी या निर्बल होते हैं। यदि इन्हें छोड़ दिया जाय तो भी शेष सब आदमी नियम बनाने में प्रत्यक्ष भाग नहीं ले सकते। उदाहरण के लिए एक साधारण नगर का विचार करो, जिसकी आबादी बीस हज़ार है, इसमें से बालक, रोगी आदि दस हज़ार निकाल दिए जायँ तो भी दस हज़ार शेष रहते हैं। इतने पुरुष स्त्री अपने घर गृहस्थ का सब काम-काज छोड़ कर एक स्थान पर एकत्र हों और विचार-विनिमय करने तथा क़ानून बनाने का कार्य करें, यह कहां तक व्यावहारिक है!

प्राचीन समय में यूनान आदि देशों के छोटे-छोटे राज्यों में सैकड़ों वर्ष तक शासन सम्बन्धी विषयों पर निर्धारित आयु के समस्त नागरिक* एकत्रित होकर अपना मत प्रकट करते थे, और उनकी सर्व सम्मति या बहु सम्मति से ही क़ानून बनते थे। इस प्रकार जनता को प्रत्यक्ष रूप से अपने यहां के व्यवस्था-कार्य में भाग लेने का अधिकार था। जब तक राज्य बहुत छोटे रहे, व्यवस्था कार्य जैसे-तैसे चलता रहा। परन्तु क्रमशः उनके बड़े और विस्तृत होजाने पर, एवं उनकी जन-संख्या बहुत बढ़ जाने पर शान्ति तथा सुगमता से कार्य सम्पादन होना असम्भव हो गया।

---

* यूनान आदि देशों में बहुत से गुलाम (दास) होते थे, उन्हें तथा स्त्रियों को नागरिक नहीं माना जाता था।

तब प्रतिनिधि-प्रणाली का आविष्कार हुआ। यह सोचा गया कि राज्य के प्रत्येक भाग (ग्राम या नगर) के समस्त नागरिक व्यवस्था-कार्य में योग देने के बजाय अपना यह अधिकार कुछ चुने हुए सज्जनों को देदें, जो उनकी ओर से आवश्यक क़ानून की रचना और शासन कार्य किया करें। ऐसे चुने हुए सज्जन 'प्रतिनिधि' कहलाने लगे। इस प्रकार यदि राज्य की जन-संख्या लाखों ही नहीं, करोड़ों भी हो तो उनकी ओर से केवल दो तीन सौ या अधिक आदमी उक्त कार्य कर सकते हैं। सुविधा और आवश्यकता होने पर यह संख्या बढ़ायी जा सकती है। यह ध्यान रखा जाता है कि प्रतिनिधियों की संख्या इतनी अधिक न हो कि उनके एक स्थान में बैठने और विचार-विनिमय करने में कठिनाई हो।

**प्रतिनिधि प्रणाली से सुविधा**—प्रतिनिधि प्रणाली से क़ानून बनाने के कार्य में लोक सत्तात्मक भावों की रक्षा करना कितना सुविधा-जनक है, यह स्पष्ट है। इससे, बड़े-बड़े विस्तृत राज्यों में दूर दूर से हज़ारों लाखों आदमियों को एक स्थान पर एकत्रित होने की आवश्यकता नहीं होती, उनकी ओर से थोड़े से आदमी शान्ति-पूर्वक विचार-विनिमय करने और क़ानून बनाने का कार्य करते हैं। साथ ही सर्व साधारण को यह संतोष रहता है कि जो आदमी क़ानून बनाते हैं वे हमारे चुने हुए हैं, हमने उनको भेजा है, वे हमारे लाभ-हानि का विचार करके ही क़ानून बनाएंगे, मनमाने क़ानून नहीं बनाएंगे। एक प्रकार से

हम अपने ही बनाए हुए क़ानूनों से शासित होंगे, हम अपने ही अधीन होंगे, अर्थात् हम स्वराज्य का उपयोग करेंगे।

प्रतिनिधि प्रणाली में जनता अर्थात् सर्व साधारण स्वयं क़ानून नहीं बनाते, वरन् उनके प्रतिनिधि यह कार्य करते हैं। इस प्रकार इस प्रणाली का अवलम्बन करने वाले राज्य में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र नहीं होता (उसका होना व्यावहारिक या सुविधा-जनक नहीं होता); हां, इसे परोक्ष प्रजातंत्र कह सकते हैं। विशेष सुविधा-जनक होने के कारण इस प्रणाली का प्रचार क्रमशः संसार के बहुत से सभ्य देशों में होगया*। प्रत्येक देश में व्यवस्थापक (क़ानून बनाने वाली) सभाओं के लिए, जनता की सर्व सम्मति या बहुमत के अनुसार, प्रतिनिधि चुने जाने लगे। एक निर्धारित अवधि के पश्चात् इन प्रतिनिधियों का नया निर्वाचन करने की रीति पड़ गयी।

**प्रत्यक्ष और परोक्ष निर्वाचन**—इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व एक बात का और विचार कर लेना आवश्यक है। प्रतिनिधि-निर्वाचन दो प्रकार से हो सकता है, प्रत्यक्ष रीति से, और परोक्ष रीति से। कल्पना करो एक प्रान्त है, जिसकी कुल आबादी चार करोड़ है, इनमें से नाबालिगों आदि

*जिन संस्थाओं का उद्देश्य राजनैतिक न होकर, सामाजिक, धार्मिक या आर्थिक आदि होता है, उनके सङ्गठन के लिए भी प्रतिनिधि-प्रणाली का उपयोग किया जाता है।

को छोड़ कर दो करोड़ आदमी ऐसे हैं जिन्हें मताधिकार प्राप्त है। ये दो करोड़ आदमी अपने अपने नगर की म्युनिसिपैलिटी या ज़िले के ज़िला-बोर्ड आदि के लिए प्रतिनिधि चुनते हैं। मानलो, प्रान्त की स्थानीय संस्थाओं के कुल प्रतिनिधियों की संख्या डेढ़ हज़ार है। अब इस प्रान्त की व्यवस्थापक परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन करना है। यदि उसके कुल दो करोड़ मतदाता इन सदस्यों का निर्वाचन करें तो इसे प्रत्यक्ष निर्वाचन कहा जायगा, और यदि व्यवस्थापक परिषद् के सदस्यों के चुनाव का अधिकार इन लोगों को न होकर केवल इनके चुने हुए उपर्युक्त म्युनिसिपल बोर्ड, और ज़िला-बोर्ड आदि के पूर्वोक्त डेढ़ हज़ार सदस्यों को ही हो तो इसे परोक्ष निर्वाचन कहा जायगा। सन् १६०६ ई० के शासन-सुधारों से भारतवर्ष में परोक्ष निर्वाचन पद्धति ही प्रचलित की गयी थी। उसके अनुसार, प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के जो सदस्य निर्वाचित होते थे, उनमें से अधिकांश का निर्वाचन म्युनिसिपल बोर्ड और ज़िला-बोर्डों के सदस्य करते थे। इसी प्रकार भारतीय व्यवस्थापक सभा के चुने जाने वाले सदस्यों में से अधिकांश प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के सदस्यों द्वारा निर्वाचित होते थे।

परोक्ष निर्वाचन की दूसरी विधि यह है कि साधारण मतदाता पहिले कुछ निर्वाचकों का चुनाव करते हैं। फिर ये निर्वाचक प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं। इस प्रकार, कल्पना करो कि किसी प्रान्त की चार करोड़ आबादी में दो करोड़ मतदाता हैं, और इस

प्रान्त में चालीस ज़िले हैं, तथा हरएक ज़िले में औसतन पांच-पांच लाख मतदाता हैं तो अगर एक ज़िले को दस-दस निर्वाचक संघों में विभक्त किया गया तो उपर्युक्त पद्धति के अनुसार पहिले प्रत्येक निर्वाचक संघ के मतदाता अपनी ओर से कुछ निर्वाचकों का चुनाव करेंगे। कल्पना करो कि प्रत्येक निर्वाचक संघ के पचास-पचास हज़ार मतदाताओं ने पचास पचास निर्वाचकों का चुनाव किया तो अब प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों का चुनाव करने में प्रान्त के समस्त दो करोड़ मतदाता भाग न लेंगे, वरन् प्रत्येक निर्वाचक संघ के केवल पचास-पचास निर्वाचक अर्थात् कुल मिलाकर ४०×१०×५० अर्थात् केवल दो हज़ार निर्वाचक ही चुनाव करेंगे।

परोक्ष निर्वाचन के पक्ष में यह कहा जाता है कि यह सरल, सुगम, तथा कम खर्चीला है। एक बार स्थानीय संस्थाओं के सदस्यों का निर्वाचन हो चुकने के बाद प्रान्तीय या केन्द्रीय व्यवस्थापक परिषद् के चुनाव के लिए फिर वैसा ही झंझट उठाना नहीं पड़ता; करोड़ों आदमियों को बार-बार मत देने का कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं होती। मध्यस्थ संस्था (म्युनिसिपल बोर्ड आदि) के सदस्य साधारण जनता की अपेक्षा अधिक योग्य होते हैं, और वे अपने प्रतिनिधि विशेष रूप से सोच समझ कर भेज सकते हैं।

परन्तु इसका दूसरा पहलू भी है अर्थात् इसके विपक्ष में भी कई बातें विचारणीय हैं। स्थानीय संस्थाओं के सदस्यों का

चुनाव करने से सर्व साधारण मतदाताओं में स्थानीय राजनीति में अनुराग उत्पन्न होता है, उनमें तदनुसार जागृति भी होती है। पर इससे उन्हें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विषयों के बारे में विचार करने का तथा व्यापक राजनैतिक शिक्षा पाने का यथेष्ट अवसर नहीं मिलता। वे देश या प्राँत के प्रश्नों और समस्याओं से अपरिचित रहते हैं। उन्हें अपने उत्तरायित्व का भी ऐसा अनुभव नहीं होता, जैसा प्रान्तीय या केन्द्रीय सभा के लिए प्रतिनिधि चुनने की दशा में होता। पुनः इस प्रथा में साधारण मतदाताओं और प्रतिनिधि में कुछ सीधा सम्बन्ध नहीं रहता, फलतः वे उस के चुनाव की ओर उदासीन से रहते हैं। इस प्रकार प्रान्तीय या राष्ट्रीय राजनीति निर्धारित करने में उनका यथेष्ट भाग नहीं होता। इससे प्रजातन्त्र शासन पद्धति का उद्देश्य ही बहुत-कुछ बिफल होजाता है। अतएव प्रायः प्रतिनिधियों का सीधा, प्रजा द्वारा, निर्वाचित होना ही उत्तम माना जाता है।

---

# * दूसरा अध्याय *

## ❋ निर्वाचक संघ ❋

मैं इस देश ( भारतवर्ष ) को ऐसे भारतवर्ष के रूप में नहीं देखता जिस में भिन्न भिन्न जातियों के प्रतिनिधि हों, जहां हिन्दू जाति अपने ही स्वार्थों की पूर्ति का प्रयत्न करे, या मुसलमान जाति अपने विशेष हित प्राप्त करने की कोशिश करे, या योरपियन लोग अपनी ही जाति के सामयिक लाभों का चिन्तवन करें; वरन् मैं इसे ऐसे भारतवर्ष के रूप में देखता हूं जो सब जातियों और सभी श्रेणियों का हो, जिसमें हिन्दू, मुसलमान, योरपियन और दूसरी प्रत्येक श्रेणी, जाति और धर्म के लोग मिल कर काम करेंगे और भारतवर्ष को महान भारतवर्ष बनाने और उसे संसार के भावी इतिहास में अधिक उच्च स्थान देने का प्रयत्न करेंगे।

—लार्ड रीडिंग

**प्राक्कथन**—प्रतिनिधि भिन्न-भिन्न दृष्टियों से निर्वाचित किए जा सकते हैं यथा क्षेत्र की दृष्टि से, पेशे या धंधे की दृष्टि से, तथा जाति या धर्म की दृष्टि से। उदाहरण के लिए एक प्रान्त की व्यवस्थापक सभा के वास्ते प्रतिनिधि चुनने हैं. इसमें यह विचार हो सकता है कि (१) इस प्रान्त के किस-किस जिले से कितने-कितने प्रतिनिधि लिए जायँ। यदि जिला बहुत बड़ा हो, और उससे एक से अधिक प्रतिनिधि लेना हो तो उस जिले के दो या अधिक ऐसे भाग किए जा सकते हैं, जिनमें से प्रत्येक से

एक-एक प्रतिनिधि लिया जा सकता है; इसी प्रकार यदि जिला इतना छोटा है कि कुल प्रान्त का विचार करते हुए उस जिले से एक प्रतिनिधि लेना उचित नहीं है तो उस जिले को किसी अन्य जिले या उसके किसी भाग से मिलाकर इस सम्मिलित क्षेत्र से एक प्रतिनिधि लिया जा सकता है। या (२) प्रान्त भर के कृषि कार्य करने वालों के इतने प्रतिनिधि हों, उद्योग धंधों में लगे हुए आदमियों के इतने प्रतिनिधि हों, शिक्षकों की ओर से इतने प्रतिनिधि हों, इत्यादि। या (३) प्रान्त भर की आबादी के हिसाब से इतने हिन्दू हों, इतने मुसलमान और इतने ईसाई आदि।

प्रायः देशों में ऐसी प्रणाली अवलम्बन की जाती है जिसमें प्रथम दो प्रकार की दृष्टियों का मिश्रण हो अर्थात् यह विचार किया जाता है, इतने क्षेत्र के अमुक अमुक कार्य करने वालों के इतने प्रतिनिधि हों।

**निर्वाचक संघ का क्षेत्र**—निर्वाचन के सुभीते के लिए प्रत्येक प्रान्त, जिला या नगर सरकार द्वारा कई भागों या क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है, प्रत्येक क्षेत्र के निर्वाचक समूह को निर्वाचक संघ कहते हैं। प्रत्येक निर्वाचक संघ अपनी ओर से प्रायः एक-एक ( कहीं-कहीं एक से अधिक ) प्रतिनिधि चुनता है।

निर्वाचक संघ का क्षेत्र कितना होना चाहिए? भिन्न-भिन्न संस्थाओं के निर्वाचक संघों के क्षेत्र का परिमाण भिन्न-भिन्न होता है। म्युनिसिपल बोर्ड के चुनाव के लिए निर्वाचन क्षेत्र नगर का

एक 'वार्ड' ( एक मोहल्ला या कुछ मोहल्लों का समूह ) होता है। ज़िला-बोर्ड के चुनाव के लिए निर्वाचन क्षेत्र कई-कई गांवों का होता है। प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के चुनाव के लिए निर्वाचन क्षेत्र एक ज़िला तक हो सकता है। इसमें ध्यान इस बात का रक्खा जाना चाहिए कि निर्वाचकों और उनके प्रतिनिधि में जितना अधिक से अधिक सम्पर्क रह सके, अच्छा है। इसलिए प्रान्तीय या केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा के चुनाव के लिए निर्वाचक संघ बड़ा न होना चाहिए। ( भारतवर्ष में संघीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों का चुनाव परोक्ष रीति से होने की व्यवस्था है, अतः उसके लिए निर्वाचक के क्षेत्र के विस्तार का प्रश्न नहीं उठता। )

**साधारण निर्वाचक**--भारतवर्ष में दो प्रकार के निर्वाचक संघ हैं, साधारण और विशेष। व्यवस्थापक संस्थाओं, तथा कुछ स्थानों में म्युनिसिपैलिटियों और ज़िला-बोर्डों के लिए साधारण निर्वाचक संघ जाति-गति निर्वाचक संघों में विभाजित किये गये हैं, जैसे मुसलमानों का निर्वाचक संघ, ग़ैर-मुसलमानों का निर्वाचक संघ, योरपियनों का निर्वाचक संघ, सिक्खों का निर्वाचक संघ, इत्यादि।

प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों तथा भारतीय व्यवस्थापक सभा के लिए जाति-गत निर्वाचक संघ प्रायः नगरों और ग्रामों में विभक्त किये गये हैं, जैसे मुसलमानों का नगर-निर्वाचक संघ, मुसलमानों का ग्राम-निर्वाचक संघ, ग़ैर-मुसलमानों का ग्राम-निर्वाचक संघ इत्यादि।

जिस क्षेत्र का निर्वाचक संघ होता है, उसका नाम भी निर्वाचक संघ के साथ जोड़ दिया जाता है, जैसे लखनऊ ज़िले का ग़ैर-मुसलमानों का ग्राम-निर्वाचक संघ।

जिस व्यवस्थापक संस्था का निर्वाचक संघ होता है, उसका भी नाम निर्वाचक संघ के साथ जोड़ देने से निर्वाचक संघ का पूरा परिचय हो जाता है, जैसे संयुक्त-प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषद् का, लखनऊ ज़िले का, ग़ैर-मुसलमानों का ग्राम-निर्वाचक संघ।

निर्वाचक संघों का ग्राम-निर्वाचक संघों और नगर-निर्वाचक संघों में विभाजित किया जाना कृत्रिम है। बहुधा दूर दूर के नगरों के निर्वाचकों के पारस्परिक हितों में इतनी समानता नहीं होती, जितनी पास पास के एक नगर और एक ग्राम के निर्वाचकों में होती है। हां, दूर दूर के नगरों में इतनी समानता अवश्य होती है, कि वे ग्रामवासियों की अपेक्षा अधिक शिक्षित होते हैं, तथा उनका जीवन अपेक्षाकृत अधिक औद्योगिक या व्यापारिक होता है। औद्योगिक और व्यापारिक दृष्टि-कोण से विशेष निर्वाचक संघों की योजना की जाती है, जिसके सम्बन्ध में आगे लिखा जायगा। इस प्रकार, सिद्धान्त से नगर निर्वाचक संघों को ग्राम-निर्वाचक संघों से पृथक् करने की आवश्यकता नहीं है। यह केवल सुविधा की दृष्टि से किया जाता है।

**विशेष निर्वाचक संघ**—भारतवर्ष में ज़मींदारों और मज़दूरों जैसे कुछ विशेष जन-समुदाय या विश्वविद्यालय तथा व्यापार सभा

(चेम्बर-आफ़-कामर्स) आदि संस्थाओं को अपने प्रतिनिधि भेजने का विशेष अधिकार दिया गया है। ऐसे जन-समुदायों या संस्थाओं के निर्वाचक संघ, विशेष निर्वाचक संघ कहलाते हैं। ये जिस जन-समुदाय या संस्था के होते हैं, उसी के नाम से इनका नाम पड़ जाता है, जैसे मध्य प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषद् के लिए जमींदारों का निर्वाचक संघ, संयुक्त-प्रान्तीय, व्यवस्थापक परिषद् के लिए प्रयाग विश्व-विद्यालय का निर्वाचक संघ।

अब हम यह विचार करते हैं कि किसी जन-समुदाय या संस्था का जाति-गत वा पृथक् निर्वाचक संघ होना कहां तक उचित है। किन्तु इसके पहिले यह विचार कर लेना आवश्यक है कि विशेष प्रतिनिधित्व ही कहां तक ठीक है।

**विशेष प्रतिनिधित्व**—इस विषय में राजनीतिज्ञों में मत-भेद है। एक पक्ष का मत है कि किसी भी प्रकार का विशेष प्रतिनिधित्व अनावश्यक, अन्याय-युक्त और देश के लिए हानिकर है। दूसरा पक्ष सिद्धान्त से तो पहले पक्ष का ही समर्थन करता है, परन्तु उसका कथन है कि जब तक समाज की स्थिति ऐसी है कि बहुत से आदमी सब के हित का विचार न करके अपनी दृष्टि छोटे छोटे क्षेत्र तक ही परिमित रखते हैं, व्यवहार में विशेष प्रतिनिधित्व से काम लेना पड़ेगा। इस पक्ष का तर्क यह है कि देश में कुछ श्रेणियों के, या कुछ स्वार्थों वाले व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिन पर सरकारी क़ानूनों और कर आदि का काफ़ी असर पड़ता है, परन्तु साधारण जनता में इन व्यक्तियों की

संख्या या प्रभाव कम होने से, ये चुनाव में नहीं आते, और, यदि आते भी हैं तो बहुत कम। इससे ये अपने लिए बनने वाले क़ानूनों या अपने ऊपर लगने वाले करों के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट नहीं कर सकते और बहुत हानि उठाते हैं। इसलिए इन व्यक्तियों को अपने कुछ विशेष प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिलना चाहिए।

इस विषय में हमारी सम्मति यह है कि समाज की उस परिस्थिति को ही बदल देने का प्रयत्न होना चाहिए जिसके आधार पर विशेष प्रतिनिधित्व की आवश्यकता बतायी जाती है। राजनैतिक विषयों में सब नागरिकों की एक ही श्रेणी हो और सबका समान ही स्वार्थ हो। इस प्रकार समाज का प्रत्येक व्यक्ति सबके लिए हो। कोई सदस्य किसी विषय में अपना मत दे, तो सभी के हित को दृष्टि में रखे। किसी विशेष श्रेणी के, या विशेष स्वार्थ वाले व्यक्तियों को पृथक् प्रतिनिधित्व देना, समाज को छिन्न भिन्न कर देना है। यह फूट की बेल एक बार लग जाने पर सदैव बढ़ती ही रहती है और अन्त में समाज भर को ग्रस्त करके छोड़ती है। इसलिए समाज के किसी अंग को विशेष प्रतिनिधित्व का अधिकार देना, सर्वथा अनुचित है।

**जाति-गत निर्वाचक संघ**—विशेष प्रतिनिधित्व को लक्ष्य में रखकर ही भारतवर्ष में मुसलमानों ने जाति-गत प्रतिनिधित्व का दावा उपस्थित किया। दुर्भाग्य से, हिन्दू नेताओं

की अत्यधिक उदारता से, तथा सरकारी अधिकारियों के पक्षपात से उनका यह दावा स्वीकृत होगया। विशेष आपत्तिजनक बात यह हुई कि यहां साधारण निर्वाचक संघ जाति-गत निर्वाचक संघों में विभक्त किये गये, और यह व्यवस्था की गयी कि किसी जाति-गत निर्वाचक संघ के प्रतिनिधियों के चुनाव के लिए वे ही व्यक्ति निर्वाचक हो सकें जो उसी जाति के हों, जिस जाति का वह निर्वाचक संघ है। इससे यहां राष्ट्रीयता का भयंकर ह्रास हो रहा है। नागरिक अपनी-अपनी जाति या धर्म आदि के पीछे पड़कर देश-प्रेम के भावों की नितान्त अवहेलना कर रहे हैं। रोग बराबर बढ़ता ही जारहा है।

हम पहिले कह आए हैं, कि जाति-गत निर्वाचक संघों की व्यवस्था विशेषतया मुसलमानों की मांग के आधार पर हुई है। यदि उनके जाति-गत निर्वाचक संघ न रहें तो सिक्खों की, अपने जाति-गत निर्वाचक संघ रखने की भी कोई मांग नहीं रहती। परन्तु जब भारतवर्ष में रहने वाली जातियां इस प्रकार अपनी पृथक्ता की घोषणा करती हैं तो सरकार के लिए योरपियनों के पृथक् निर्वाचक संघ रखने की बात बनी-बनायी है। अस्तु, हम तो मूल सिद्धान्त का ही विरोध करते हैं। वास्तव में एक बार जाति-गत निर्वाचक संघों का श्रीगणेश कर देने पर फिर उसका कहीं अन्त ही नहीं दिखायी देता। नित्य नयी जाति उप-जातियां इस विषय की अपनी पृथक् पृथक् मांग उपस्थित करती रहती हैं।

सरकार का उन्हें संतुष्ट करना अधिकाधिक कठिन होता जाताहै। जितना वह एक जाति को संतुष्ट करने का प्रयत्न करती है, उतना ही अन्य जातियों के प्रति अनौचित्य होता है। इससे सरकार की निष्पक्षता जाती रहती है, और फल-स्वरूप उसकी नैतिक शक्ति घटती जाती है।

निर्वाचन जैसे नागरिक कार्य में जाति-गत विचार होने से जनता में राजनैतिक असन्तोष तो बढ़ता ही है। इसके अतिरिक्त, भिन्न-भिन्न जातियों में वैमनस्य, फूट और कलह भी बढ़ती जाती है। क्या प्रत्येक जाति के बुद्धिमान आदमी मिलकर जाति-गत निर्वाचन के विरुद्ध लोकमत तैयार करेंगे और क्या सरकार राष्ट्र-हित की दृष्टि से विचार करेगी ? इस सम्बन्ध में विशेष आगे लिखा जायगा।

**निर्वाचक संघ एक-एक प्रतिनिधि वाला होना चाहिए या कई-कई प्रतिनिधियों वाला ?**—निर्वाचक संघों के बारे में एक विचारणीय प्रश्न यह रहता है कि उनकी सीमा इस प्रकार से निर्धारित की जाय कि एक निर्वाचक संघ से एक ही प्रतिनिधि लिया जाय, अथवा उसका क्षेत्र ऐसा हो कि उससे एक से अधिक प्रतिनिधि लिये जायँ। साधारणतया सिद्धान्त से यही अच्छा है कि निर्वाचक संघों की सीमा इस प्रकार निर्धारित की जाय कि एक निर्वाचक संघ से एक ही प्रतिनिधि लिया जाय। इससे निर्वाचन में सुविधा तथा सरलता रहती है।

परन्तु भारतवर्ष में जाति-गत निर्वाचन की व्यवस्था है, और कई जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या क़ानून से निर्धारित है। इस समय उनके पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था है। लोकमत बहुत-कुछ इसके विरुद्ध है, और यहां संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था को जाने के लिए प्रयत्न हो रहा है। परन्तु अभी विभिन्न जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या निर्धारित बनी रखने के विरुद्ध यथेष्ठ लोकमत तैयार नहीं हुआ है। यदि संयुक्त निर्वाचन होने लगे और प्रतिनिधियों की संख्या जातिवार निर्धारित रहे तो निर्वाचक संघ एक-एक प्रतिनिधि वाले नहीं बनाये जा सकते; कारण कि उस दशा में एक निर्वाचक संघ से एक ही जाति का ( एक ) प्रतिनिधि चुना जा सकेगा। इससे दूसरी जाति के निर्वाचकों को असन्तोष होगा। साथ ही इस प्रकार समस्त निर्वाचक संघों से विभिन्न जातियों के प्रतिनिधियों के निर्धारित संख्या में चुने जाने की भी कोई गारण्टी नहीं रहती। निदान, संयुक्त निर्वाचन होने की दशा में, जब तक कि विभिन्न जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या क़ानून से निर्धारित है, तिर्वाचक संघ ऐसे ही रखने होंगे, जिनसे कई-कई प्रतिनिधि चुने जाँय।

# * तीसरा अध्याय *

## ❋ साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन ❋

'जब तक भारत के सभी समाज, सभी सम्प्रदाय और जातियां आपस में मिलकर एक राष्ट्र क़ायम नहीं करेंगी, तब तक स्वराज्य की आशा स्वप्नवत् रहेगी । परन्तु पृथक् निर्वाचन तो राष्ट्रीय भावना जागृत करने में सबसे बड़ा बाधक है ।'

—प्रो० अब्दुल मजीद खां

पहिले कहा जा चुका है कि भारतवर्ष में पृथक् और साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति प्रचलित है । इसका सिद्धान्त से बिल्कुल समर्थन नहीं हो सकता । देश-हितैषी और विचारशील भारतवासी इसकी सदैव निन्दा करते रहे हैं । फिर, यह पद्धति कैसे प्रचलित हुई ?

**प्रारम्भिक इतिहास**—सन् १९०५ ई० के बंग-भंग आन्दोलन का भारतीय इतिहास में विशेष स्थान है । उससे भारतीय जनता में जो व्यापक असंतोष हुआ, वह सर्व-विदित है । अन्य असंतोष-जनक बातों का भी अभाव न था । फलतः तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड मिन्टो को यहां की शासन-पद्धति में थोड़ा-बहुत सुधार करने की अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत हुई,

उन्होंने नरम दल के भारतीयों को संतुष्ट करने के हेतु भारत-मंत्री लार्ड मार्ले से विचार किया। लार्ड मिन्टो के विषय में अब यह कोई रहस्य नहीं है कि वे कुछ महत्वाकांक्षी और साम्प्रदायिक मुसलमान नेताओं की सहानुभूति प्राप्त करने के बहुत इच्छुक थे। उनसे सन् १९०६ ई० में हिज़-हाईनेस सर आग़ा खां के नेतृत्व में मुसलमानों का एक प्रतिनिधि-मंडल (डेप्यूटेशन) मिला, जिसके सम्बन्ध में पीछे कोकोनाडा कांग्रेस के सभापति की हैसियत से भाषण करते हुए स्व० मौलाना मोहम्मद अली ने कहा था कि यह तो सरकारी अधिकारियों के आज्ञानुसार ही पहुंचा था।* अस्तु, सन् १९०९ ई० के मार्ले-मिन्टो सुधारों में मुसलमानों के लिए, भारतीय व्यवस्थापक सभा और पंजाब × को छोड़कर अन्य प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों में पृथक् साम्प्रदायिक

---

* "मैं स्वयं इस बात का गवाह हूं कि आंदोलन के फल-स्वरूप १९०६ ई० में जब कुछ शासन-सुधार दिया जाने वाला था तब शिमले से तार भेजकर नवाब मोहसिनुलमुल्क को बम्बई से बुलाया गया। शिमले में उनकी जो बात-चीत हुई उसका नतीजा यह निकला कि आगाखां यद्यपि योरप जा रहे थे, उन्हें तार भेजकर अदन से वापिस बुला लिया गया। हैदराबाद (दक्षिण) के सैयद बिलग्रामी ने मुसलमानों की ओर से मेमोरियल तैयार किया, जिसमें मुसलमानों के लिए प्रथक् निर्वाचन की मांग पेश की थी। यह सब काण्ड शिमले के इशारे पर किया गया था।" —मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद

× पंजाब में मुसमानों की आबादी हिन्दुओं से अधिक है।

की जाती है तो सिक्खों के साथ भी क्यों न की जाय। अधिकारियों ने मुसलमानों के लिए इस प्रथा को बन्द कर देने की अपेक्षा इसे सिक्खों के लिए भी जारी करके अपनी कूट-नीति का परिचय दिया।

**सन् १९३५ के शासन-सुधारों में साम्प्रदायिक निर्वाचन की वृद्धि**—यह आशा की जाती थी कि प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना का दावा करने वाले आगामी शासन-सुधारों में इस दोष का निवारण कर दिया जायगा। परन्तु यह नहीं हुआ। इसके विपरीत सन् १९३५ ई० के विधान से इसे और बढ़ा दिया गया। नवीन शासन विधान के अनुसार अब यहां १५ प्रकार के निर्वाचक संघ हैं:—

१—साधारण

२—सिक्ख

३—मुसलिम

४—ऐंग्लो-इंडियन

५—योरपियन

६—भारतीय ईसाई

७—व्यापार, उद्योग और खणिज

८—जमींदार

९—विश्व-विद्यालय

१०—श्रम

११-स्त्रियां—साधारण
१२- „ —सिक्ख
१३- „ —मुसलिम
१४- „ —ऐंग्लो-इंडियन
१५- „ —भारतीय ईसाई

महात्मा गांधी ने अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर हरिजनों के साथ समझौता करा दिया, और उनके लिए साधारण निर्वाचक संघों से चुने जाने वाले प्रतिनिधियों में ही स्थान सुरक्षित करा दिये। * अन्यथा, उपर्युक्त सूची में एक की और वृद्धि होकर निर्वाचक संघ १६ प्रकार के हो जाते। भारतीय ईसाइयों ने पृथक् निर्वाचन की मांग नहीं की थी, उन्हें भी यह प्रदान किया गया। विशेष दुख की बात तो यह है कि महिला समाज को भी, साम्प्रदायिक आधार पर मताधिकार देकर उनकी इस समय तक की एकता का लोप कर दिया गया है; उन्हें जाति और धर्म के भेद-भावों से विभक्त कर दिया गया है। अब प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा की कोई महिला-सदस्य किसी क्षेत्र के पूर्ण स्त्री-समाज की प्रतिनिधि न होकर केवल अपनी जाति या धर्म विशेष की स्त्रियों की प्रतिनिधि होगी। इससे महिला समाज की उन्नति में भयंकर बाधा उपस्थित होना स्पष्ट है।

* इसके विषय में विशेष अगले अध्याय में लिखा जायगा।

**साम्प्रदायिक निर्वाचन से हानि**—आज कल मुसलमान उम्मेदवारों को केवल मुसलमान निर्वाचकों का, और, हिन्दू उम्मेदवारों को केवल हिन्दू निर्वाचकों का मत संग्रह करना होता है। प्रायः ये उम्मेदवार अपनी अपनी जाति में जितने अधिक 'कट्टर' प्रसिद्ध होते हैं, उतने ही अधिक मत इन्हें मिलने की आशा होती है। इसलिए निर्वाचनों के पहिले अपनी 'कट्टरता' की विज्ञप्ति करना भी कुछ उम्मेदवार अपना आवश्यक कार्य समझते हैं। ये लोग दूसरे सम्प्रदाय या जाति वालों की निन्दा करके अपनी जाति-हितैषिता या सम्प्रदाय-भक्ति का परिचय देकर व्यवस्थापक सभाओं में जाने का प्रयत्न करते हैं। इससे भिन्न-भिन्न जातियों में एक दूसरे के प्रति वैमनस्य बढ़ता जाता है। वास्तव में, साम्प्रदायिक निर्वाचन की व्यवस्था होने की दशा में साधारण मतदाता भी व्यवस्थापक सभा में योग्य प्रतिनिधि भेजने की चिन्ता नहीं करते; उम्मेदवार की योग्यता या अयोग्यता का विचार नहीं किया जाता; अथवा यों कह सकते हैं कि जो उम्मेदवार अन्य सम्प्रदायों के दोषों या अवगुणों को दिखाने में जितना अधिक समर्थ होता है, उतना ही वह अधिक योग्य समझा जाता है। ऐसी परिस्थिति में साम्प्रदायिक पृथकता के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा, व्यवस्थापक सभाओं में देश या प्रान्त के उपयोगी नागरिक-हितकर क़ानून बनाने की ओर यथेष्ट ध्यान कैसे दिया जा सकता है!

यह समझना भूल है कि कट्टर विचारों के आदमी ही अपनी

अपनी जाति के सच्चे प्रतिनिधि होते हैं। वास्तव में कट्टरता की वृद्धि जिन कारणों से हुई है, उनमें से एक मुख्य यह है कि शासन-व्यवस्था में साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन को स्थान दिया गया है। पिछले निर्वाचनों से यह भली भांति सिद्ध हो चुका है कि हिन्दुओं की निन्दा करने वाले व्यक्ति मुसलमानों के, या मुस्लिम-द्रोही व्यक्ति हिन्दुओं के सच्चे प्रतिनिधि नहीं होते। वे तो अपने स्वार्थ-साधन या नेतागिरी के अभिलाषी होते हैं, और जब तक साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था रहेगी, तब तक उनका अस्तित्व बना-बनाया है।

साम्प्रदायिक निर्वाचन होने की दशा में व्यवस्थापक सभा में अल्प-संख्यक समुदाय के सदस्यों की, विपक्षी दल के बहुमत के आगे कुछ नहीं चलती। वे सरकारी दल के मुखापेक्षी रहते हैं। यदि पराधीन देश में, वे किसी विषय में सरकारी दल के सहारे से जीत भी जाते हैं तो इस जीत से उनकी वास्तविक योग्यता या सामर्थ्य नहीं बढ़ती, वरन् उनमें परावलम्बन की भावना बढ़ती है, और वे देश को पराधीनता की कड़ियों को मजबूत तथा अधिक स्थायी बनाने में सहायक होते हैं।

**लाभ कुछ भी नहीं**—निर्वाचन के अवसर पर मुसलमानों, हिन्दुओं या सिक्खों आदि को अलग-अलग दल होता है। पर उसके बाद ही इन दलों का लोप हो जाता है। व्यवस्थापक सभाओं में समय-समय पर जो भिन्न-भिन्न दल बनते हैं, उनका आधार जाति-गत नहीं होता, वरन् राजनैतिक या आर्थिक आदि

होता है। प्रत्येक हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख या ईसाई आदि अपने-अपने मत के अनुसार इन में से किसी एक दल का सदस्य बन जाता है। पृथक् निर्वाचन के आधार पर, किसी सदस्य को उसके मन-चाहे दल में सम्मिलित होने से रोका नहीं जाकसता। जाति-गत दलों की क्षण-भंगुरता से यह स्पष्ट है कि पृथक् निर्वाचन से चुने हुए सदस्यों से उनकी जाति का लाभ नहीं होता।

यह कहा जासकता है कि कभी-कभी व्यवस्थापक सभाओं में ऐसे प्रश्न उपस्थित होसकते हैं कि सरकारी नौकरियां अमुक अनुपात में हिन्दुओं और मुसलमानों आदि को दी जाय; ऐसी दशा में हिन्दू या मुसलमान सदस्य अपनी जातिका पक्ष समर्थन कर सकते हैं। इस विषय में स्मरण रहे कि यदि दस-पांच नौकरियां किसी जाति के आदमियों को विशेष रियायत के तौर से, या साम्प्रदायिक लिहाज़ से मिल भी जायँ तो इससे उस जाति का विशेष लाभ नहीं होता। जाति का सामुहिक या वास्तविक हित होने के लिए तो यह आवश्यक है कि उस जाति के आदमियों की योग्यता बढ़े, और वे कुछ खास रियायतों का आसरा न तक कर स्वावलम्बी और साहसी बनें।

यदि थोड़ी देर के लिए यही मान लिया जाय कि किसी जाति के आदमी व्यवस्थापक सभाओं में जाकर अपनी जाति के इने-गिने आदमियों के लिए तो कुछ रियायतें प्राप्त कर ही सकते हैं—जो रियायतें दूसरी जाति के आदमी उन्हें नहीं दिलाते—तो

यह काम तो व्यवस्थापक सभाओं में उस जाति के प्रतिनिधियों की संख्या निर्धारित करने से, और संयुक्त निर्वाचन पद्धति व्यवहृत करने से भी होसकता है ( जिसके सम्बन्ध में विशेष विचार आगामी अध्याय में किया गया है ),। इसके वास्ते पृथक् निर्वाचन की तो कोई आवश्यकता ही नहीं है, जिससे कि जातिगत राग-द्वेष बढ़ता है।

**साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन के पक्षपाती विचार करें**--बर्तमान अवस्था में विशेषतया मुसलमान (इन में से भी वे जो अनुदार विचारों और संकीर्ण दृष्टि-कोण वाले हैं), अपने पृथक् निर्वाचन के कल्पित अधिकार को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते; उनकी समझ में यह बात नहीं आती कि यह राष्ट्रीय दृष्टि से तो अनर्थकारी है ही, स्वयं उनके लिए भी पर्याप्त हानिकर है। प्रो० अब्दुल मजीदखां ने ट्रिब्यून में ठीक लिखा था, "साम्प्रदायिक चुनाव अल्प-संख्यक जातियों के पारस्परिक मनमोटाव को स्थिर कर देता है, इस प्रकार की रियायतों से जातियों की स्वाभाविक उन्नति रुकजाती है, उन में आत्म-विश्वास की भावना नहीं आती, और वे रियायती नीति की मियाद बढ़ाने की मांग जारी रखती हैं। जिस जाति या सम्प्रदाय को अपनी कमज़ोर या पिछड़ी हुई हालत के कारण, खास प्रतिनिधित्व मिल जाता है उसे अपनी सुरक्षा के अधिकार की गारण्टी मिल जाती है, वह अपने को अधिक शिक्षित या योग्य बनाने की चिन्ता छोड़ देता है। दूसरी ओर, बहु-संख्यक जाति वाले यह अनुभव

करने लगते हैं कि उन्होंने अपने कमजोर देश-भाइयों के लिए, जो करना था, कर दिया, और उन्हें अपने प्रयोजन सिद्ध करने के लिए अपनी शक्ति प्रयोग करने का अधिकार है। राजनैतिक जीवन का सार 'दो और लो' की नीति नष्ट होजाती है, दोनों जातियां अपने को नियंत्रण में नहीं रख सकतीं। इस पृथक् चुनाव के परिणाम-स्वरूप उन्नति होनी तो दूर रही, उलटी, मुसलमानों की अवनति हुई है। सन् १९०९ ई० की अपेक्षा अब मुसलमान भिखारियों और कर्ज़दारों की संख्या बढ़गयी है, और मुसलिम मुजरिमों की संख्या भी कम नहीं हुई। शिक्षित मुसलिमों की संख्या में कोई वृद्धि नहीं हुई। सम्प्रदायवादियों ने कभी सम्मिलित चुनाव का अमृत चखने की कोशिश नहीं की, वही अकेला इस राष्ट्रीय बीमारी को दूर कर सकता है।"

उपर्युक्त पंक्तियों पर मुसलमानों को, एवं एंग्लो-इंडियन आदि उन अन्य जातियों के आदमियों को गम्भीरता-पूर्वक विचार करना चाहिए, जो मुसलमानों की देखा-देखी साम्प्रदायिक निर्वा-चन के 'अधिकार' को प्राप्त करने के लिए तरह-तरह का आन्दोलन किया करते हैं।

# * चौथा अध्याय *

## ❀ संयुक्त निर्वाचन ❀

' इसमें सन्देह नहीं कि संयुक्त निर्वाचन से वर्तमान वैमनस्य यदि दूर न भी हुआ तो उसे बढ़ाने वाला एक कारण दूर हो जायगा, तथा दोनों ( हिन्दू और मुसलिम ) दलों के नेताओं को परस्पर सहायता की आवश्यकता प्रतीत होने लग जायगी । सम्भव यह भी है कि दोनों समाजों के विचारशील पुरुष भी सहयोग के लाभ देखने लग जायँ । मूलतः दोनों का स्वार्थ एक ही है ।' —'आज'

' साम्प्रदायिक बुराइयों और इससे पैदा होने वाले रोगों की अचूक दवा संयुक्त निर्वाचन ही है ।' —प्रो० अब्दुल मजीद खाँ

**संयुक्त निर्वाचक संघों की आवश्यकता**—पृथक् निर्वाचन से होने वाली अनेकता राष्ट्रीयता का गला घोट रही है। जनता के वास्तविक स्वराज्य के लिए ऐसी व्यवस्था की जाने की आवश्यकता है कि किसी उम्मेदवार के लिए न केवल उसकी ही जाति वाले, वरन् दूसरी जाति के भी निर्वाचक अपना मत दे सकें। अथवा यों कह सकते हैं कि निर्वाचक संघ जाति-गत न रहें, वे संयुक्त होने चाहिए । उदाहरणार्थ यदि एक जिले या कमिश्नरी से एक हिन्दू और एक मुसलमान सदस्य निर्वाचित करना है तो इस निर्वाचन क्षेत्र में ऐसी व्यवस्था न होनी चाहिए

कि इसके मुसलमान निर्वाचक, मुसलमान सदस्य को चुनें और हिन्दू निर्वाचक, हिन्दू सदस्य को । इसके विपरीत, क़ानून ऐसा होना चाहिए कि मुसलमान सदस्य के चुनाव में हिन्दू निर्वाचक, और हिन्दू सदस्य के चुनाव में मुसलमान निर्वाचक भी अपना मत दे सकें । *

**संयुक्त निर्वाचन से राष्ट्रीयता की वृद्धि**— संयुक्त निर्वाचन होने की दशा में उम्मेदवार अपनी जाति या सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य जाति या सम्प्रदाय वालों के भी मत प्राप्त करना चाहता है, और ये मत उसे तभी मिल सकते हैं जब वह अपना दृष्टिकोण संकुचित या जाति-गत न रखकर उदार तथा राष्ट्रीय रक्खे, और अपने व्यवहार से अन्य जाति वालों का भी विश्वास-भाजन बनसके । इस प्रकार संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था से, प्रतिनिधि बनने के उम्मेदवारों को गौण रूप में उदार तथा राष्ट्र-हितैषी होने और सङ्कीर्ण जाति-गत विचार छोड़ने की प्रेरणा मिलती है ।

**संयुक्त निर्वाचन का समर्थन**—कुछ आदमी कह दिया करते हैं कि बहु-संख्यक सम्प्रदाय के आदमी ( हिन्दू ) ही संयुक्त निर्वाचन का इतना समर्थन तथा आग्रह करते हैं। इस कथन में कुछ तत्व नहीं है । हिन्दुओं की बात जाने दें, पाश्चात्य देशों के

* इसी प्रकार योरपियनों या सिक्खों आदि के लिए भी पृथक् जाति-गत निर्वाचक संघ न रहने चाहिए ।

राजनीतिज्ञों के विचार देखिए; एक-एक ने संयुक्त निर्वाचन के पक्ष में कैसे सुन्दर विचार व्यक्त किये हैं! हम पहिले कह चुके हैं कि भारतवर्ष में इस प्रथा को प्रचलित करने वाले अँगरेज़ अधिकारी भी सिद्धान्त से तो संयुक्त निर्वचन को ही अच्छा कहते हैं, किसी ने पृथक् या साम्प्रदायिक निर्वाचन को संयुक्त निर्वाचन से बेहतर बताने का दुस्साहस नहीं किया। हां, वे अपनी लाचारी का, भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थिति का आसरा लेते रहे हैं। खेद है कि वे कभी यह नहीं सोचते कि साम्प्रदायिक निर्वाचन यहाँ के जाति-विद्वेष रूपी रोग का उपाय न होकर स्वतः उसका एक मुख्य कारण है। अस्तु, सौभाग्य से भारतवर्ष में उन मुसलमानों का अभाव नहीं है, जो राजनैतिक विषयों को विशुद्ध दृष्टिसे देखते हैं और उन पर स्पष्ट मत प्रकट करते हैं। ऐसे कुछ व्यक्तियों का मत हमने अन्यत्र उद्धृत किया है। प्रसङ्ग-वश एक सज्जन का मत यहां भी दिया जाता है।

**एक मुसलमान विचारपति का मत**—निज़ाम राज्य के विचारपति नवाब मिर्ज़ायार जंग समीउल्लावेग ने कहा है * कि "सन् १६१६ ई० में हमने पृथक् निर्वाचन का समर्थन किया था। उस समय हम अज्ञात मार्ग पर अग्रसर हो रहे थे, इसलिए सङ्कट की कल्पना कर उसकी निवृत्ति का यह उपाय भी आवश्यक प्रतीत हुआ था। तब से अब तक दस साल हो गये हैं,

* 'आज' के आधार पर।

यदि सावधानता उस समय स्वतंत्र निर्वाचन पर जोर दे रही थी तो दस साल का अनुभव अब बता रहा है कि स्वतंत्र निर्वाचन से जो लाभ हो सकते हैं, वे सब संयुक्त निर्वाचन से भी हो सकते हैं, बशर्ते कि मुसलमान सदस्यों की संख्या निर्द्धारित कर दी जाय। प्रकृत अवस्था का विचार कीजिए। स्वतंत्र क्षेत्र से जो मुसलमान सदस्य निर्वाचित हुए हैं, वे न भिन्न-भिन्न जातियों में बढ़ने वाले द्वेष की बाढ़ को रोक सके हैं और न अपनी जाति के लिए विशेष अधिकार ही प्राप्त कर सके हैं।" नव्वाब साहब ने संयुक्त निर्वाचन-क्षेत्र से होने वाले लाभ भी बताये हैं। आप कहते हैं कि "संयुक्त निर्वाचन-क्षेत्र से कम से कम यह तो होगा कि हिन्दू और मुसलमानों को परस्पर मिलने का अवसर अधिक मिलेगा, एक दूसरे की सहायता प्राप्त कर लेने के अवसर अधिक उपस्थित होंगे, उनके सहयोग के अवसर बढ़ जायँगे, एक दूसरे को निमंत्रणादि देने की प्रवृत्ति बढ़ जायगी, संयुक्त सभाएं होने लगेंगी, एक-दूसरे के भावों का अधिक विचार किया जाने लगेगा; सारांश, इससे वह भाव कुछ घट जायगा जो वर्षों से दोनों के बीच का अन्तर बढ़ाये चला जा रहा है, और इस प्रकार स्वाभाविक सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होगा। हो सकता है कि वर्तमान रोग की उत्पत्ति स्वतन्त्र निर्वाचन से नहीं हुई है, पर स्वतन्त्र निर्वाचन में रोग-निवारण के जो गुण नहीं हैं, वे संयुक्त निर्वाचन में हो भी सकते हैं।"

**एक आशङ्का और उसका निवारण**—कुछ आदमी

संयुक्त निर्वाचन पद्धति को पृथक् अथवा साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति की अपेक्षा अच्छा तो मानते हैं, पर उन्हें एक आशंका होती है, वह यह कि संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था होने से व्यवस्थापक सभाओं में अल्प-संख्यक जातियों के प्रतिनिधि कम पहुँचेंगे। हम पहिले कह चुके हैं कि सिद्धान्त से व्यवस्थापक सभाओं में जाने वाले प्रतिनिधि जाति-गत आधार पर नहीं जाने चाहिए, ऐसे प्रतिनिधि वहां जाकर अपनी जाति का कोई वास्तविक हित-साधन नहीं कर सकते। इस दृष्टि से किसी जाति के प्रतिनिधि कुछ कम जायँ, या अधिक, यह विचार ही महत्व-हीन है। परन्तु जो लोग अभी यह बात समझने में असमर्थ हैं, और भिन्न-भिन्न अल्प-संख्यक जातियों के यथेष्ट प्रतिनिधि न पहुँच सकने की आशंका से ही संयुक्त निर्वाचन का विरोध करते हैं, उन्हें विदित हो कि उनकी उपर्युक्त आशंका निर्मूल है, कारण कि इनके प्रतिनिधियों की संख्या तो क़ानून द्वारा निर्धारित है, और जबतक देश की परिस्थिति में सम्यग् सुधार न हो, वह निर्धारित रक्खी जा सकती है।

**अल्प-संख्यक जातियों के लिए स्थान सुरक्षित रखने की व्यवस्था; मुसलमानों के सम्बन्ध में विचार**—अब हम यह बतलाते हैं कि अल्प-संख्यक जातियों के प्रतिनिधियों के लिए स्थान किस प्रकार सुरक्षित रहते हैं, अर्थात् इस दशा में मतों की व्यवस्था किस प्रकार की जाती है। कल्पना करो कि एक

संयुक्त निर्वाचक संघ से तीन प्रतिनिधि लिये जाते हैं, और क़ानून से यह निर्धारित कर दिया गया है कि उन में से दो हिन्दू और एक मुसलमान होंगे। मानलो हिन्दू उम्मेदवार चार हैं, और मुसलमान दो। संयुक्त निर्वाचन होने के कारण, हिन्दू हो या मुसलमान, प्रत्येक मतदाता को तीन मत इस प्रकार देने होंगे, दो हिन्दू उम्मेदवारों को एक-एक मत, और एक मुसलमान को एक मत। मतदाता चाहे तो अपने एक या दो मतों का उपयोग न करे। परन्तु वह यह नहीं करसकता कि दो से अधिक हिन्दू उम्मेदवारों को, या एक से अधिक मुसलमान उम्मेदवार को, मत दे। स्मरण रहे कि इस प्रणाली में मतदाता एक उम्मेदवार को एक ही मत देसकता है, अधिक नहीं। *

अब कल्पना करो कि हिन्दू उम्मेदवारों को मत निम्न लिखित प्रकार से मिलते हैं:—

| | | |
|---|---|---|
| पहला उम्मेदवार | राम | ८००० |
| दूसरा ,, | मोहन | ७५०० |
| तीसरा ,, | सोहन | ७२५० |
| चौथा ,, | गोविन्द | ६८०० |

* इस लिए इस प्रणाली को 'एक उम्मेदवार-एक मत' पद्धति कहा जाता है। इसके सम्बन्ध में विशेष आगे आठवें अध्याय ('मत-गणना प्रलाली') में कहा गया है।

और, मुसलमान उम्मेद्वारों के मत इस प्रकार हैं:—

| | | |
|---|---|---|
| पहला उम्मेद्वार | अब्दुल्ला | ७००० |
| दूसरा „ | रहीम | ५८०० |

अब यदि क़ानून द्वारा मुसलमानों के लिए एक स्थान सुरक्षित न हो तो मत-गणना के विचार से राम, मोहन और सोहन तीनों हिन्दू ही उम्मेद्वार निर्वाचित होजायँ, किसी मुसलमान उम्मेद्वार के निर्वाचित होने का अवसर न आये, कारण, उसे तीसरे हिन्दू उम्मेद्वार सोहन से भी कम मत प्राप्त हैं। परन्तु क्योंकि एक स्थान मुसलमानों के लिए सुरक्षित है, अतः हिन्दू उम्मेद्वारों में से राम और मोहन ये दो ही निर्वाचित घोषित किये जायंगे। तीसरे प्रतिनिधि के चुनाव के लिए मुसलमान उम्मेद्वारों में से जिसे सबसे अधिक मत मिले हैं, उसे चुना जायगा। इस प्रकार अब्दुल्ला भी निर्वाचित घोषित किया जायगा, यद्यपि उसे हिन्दू उम्मेद्वार सोहन की अपेक्षा कम मत मिले हैं।

**हरिजनों के सम्बन्ध में विचार**—पिछले अध्याय में यह कहा जा चुका है कि कुछ महत्वाकांक्षी और साम्प्रदायिक विचार रखने वाले हरिजन नेताओं के भावों के आधार पर सरकार ने पहिले हरिजनों को भी पृथक् निर्वाचन का अधिकार देने का विचार किया था, परन्तु महात्मा गांधी ने आजीवन उपवास आरम्भ करके वह बात चलने न दी। उन्होंने हरिजनों के साथ ऐसा समझौता करा दिया, कि उनके प्रतिनिधियों के लिए प्रान्तीय तथा

केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाओं में निर्धारित स्थान सुरक्षित रहें, परन्तु इन प्रतिनिधियों का चुनाव पृथक् निर्वाचिक संघों द्वारा न होकर संयुक्त निर्वाचन पद्धति से ही हो। इसके लिए यह विधि निश्चित की गयी कि जितने हरिजन साधारण निर्वाचन में भाग लेने वाले अर्थात् निर्वाचक हों, वे व्यवस्थापक सभा के प्रत्येक सुरक्षित स्थान के लिए पहिले चार-चार व्यक्तियों को चुनें। उक्त निर्वाचकों को एक-एक ही मत देने का अधिकार होगा। प्रारम्भिक चुनाव में जिन चार व्यक्तियों को सबसे अधिक मत मिलेंगे, वे ही साधारण निर्वाचन में उम्मेदवार होंगे। उनके लिए हरिजन एवं अन्य हिन्दू निर्वाचक अपना-अपना मत देंगे, चारों हरिजन उम्मेदवारों में से जिसके पक्ष में सबसे अधिक मत आयेंगे, वह निर्वाचित घोषित किया जायगा। इस प्रकार, हरिजन प्रतिनिधि का चुनाव संयुक्त निर्वाचन तथा संरक्षण सिद्धान्त के अनुसार होगा।

हरिजनों के निर्वाचन में, उस विधि से कुछ अन्तर है, जो हमने ऊपर मुसलमानों के सम्बन्ध में बताई है। उदाहरणवत, यदि किसी निर्वाचक संघ से पांच उम्मेदवार हैं, दो हरिजन *

---

* पहिले कहा गया है कि प्रत्येक हरिजन स्थान के लिए चार-चार उम्मेदवार चुने जायंगे, यहां यह मान लिया जाता है कि उक्त चार उम्मेदवारों में से दो बैठ गये हैं, वे अपने चुनाव के लिए खड़े नहीं होते।

और तीन सवर्ण हिन्दू, और उनमें से एक हरिजन और दो सवर्ण हिन्दू लिये जाने वाले हैं, इनके निर्वाचन में कोई मतदाता यदि चाहे तो अपने तीनों मत किसी एक हरिजन या किसी एक सवर्ण हिन्दू उम्मेदवार को दे सकता है। * हां, जब मत-गणना होगी तो दोनों हरिजनों में से जिस हरिजन उम्मेदवार के लिए अधिक मत मिलेंगे, वह निर्वाचित घोषित किया जायगा, चाहे उसे सवर्ण हिन्दू उम्मेदवारों में से सबसे कम मत पाने वाले व्यक्ति से भी कम मत मिले हों। अर्थात् यदि संरक्षण न होता तो सम्भव था कि मतों के हिसाब से तीनों ही सवर्ण हिन्दुओं का निर्वाचन होजाता, और किसी हरिजन उम्मेदवार को उनके मुक़ाबिले में सफलता न मिलती; पर अब हरिजनों के लिए स्थान संरक्षित होने से हरिजन उम्मेदवार का मुक़ाबिला सवर्ण हिन्दुओं से है ही नहीं, उसे अपनी सफलता के लिए केवल हरिजन उम्मेदवारों में ही सबसे अधिक मत प्राप्त करने हैं।

**विशेष वक्तव्य**—इस प्रकार संयुक्त निर्वाचन में प्रतिनिधियों के स्थानों का संरक्षण दो प्रकार से हो सकता है, (१) 'एक उम्मेदवार-एक मत' पद्धति से, और (२) एकत्रित मत पद्धति से। इन पद्धतियों के सम्बन्ध में विशेष आगे लिखा जायगा। अस्तु, संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था से वह आशंका

---

* यह पद्धति 'एकत्रित मत पद्धति' कही जाती है। इसके विषय में विशेष आठवें अध्याय (मत-गणना पद्धति) में लिखा गया है।

करना व्यर्थ है कि अल्प-संख्यक जातियों के प्रतिनिधि कम चुने जायंगे। पूर्वोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संयुक्त निर्वाचन पद्धति जातिगत वैमनस्य को दूर करने और जनता में देश-प्रेम का भाव बढ़ाने में बहुत सहायक होगी। अतः हमें इसे क़ानून द्वारा प्रचलित कराने का प्रयत्न करना चाहिए।

संयुक्त प्रांत की स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं में, कुछ सदस्यों के स्थानों को सुरक्षित करके संयुक्त निर्वाचन की प्रथा काम में लाने के विषय में विचार होरहा है। सीमा प्रान्तीय सरकार ने तो स्थानीय संस्थाओं के लिए संयुक्त निर्वाचन की प्रथा को स्वीकार करके उन साम्प्रदायिक मुसलिम नेताओं को बहुत ही अच्छा जवाब दिया है जो सदैव यह कहा करते हैं कि मुसलमान कभी भी साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन का त्याग नहीं कर सकते। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त विशेषतया मुसलमानों का प्रान्त है, और, उसका साम्प्रदायिक तनाव को दूर करने का यह प्रयत्न बहुत आशाप्रद है।

---

# * पांचवां अध्याय *

## ❀ निर्वाचक ❀

जब तक तुम्हारे देश-बन्धुओं में से एक भी ऐसा है जिसका, राष्ट्रीय जीवन की उन्नति के लिए अपना चुना हुआ प्रतिनिधि नहीं है, तुम्हारा देश सब का, और सब के लिए नहीं है, जैसा कि वह होना चाहिए।

—मेज़िनी

मेरा तो मोटा सिद्धान्त यह है कि नागरिकों का मताधिकार, चाहे वे नागरिक कम हों या ज्यादह—वे ज़्यादह हों तो और अच्छा है—राज्य की शक्ति को बढ़ाने वाला होता है। —ग्लेडस्टन

**मताधिकार का महत्व**—जो व्यक्ति व्यवस्थापक सभा ( तथा म्युनिसिपल बोर्ड या ज़िला-बोर्ड ) के सदस्यों के निर्वाचन में मत देने के अधिकारी होते हैं, उन्हें निर्वाचक या मत-दाता ('वोटर') कहते हैं, और उनका यह अधिकार 'मताधिकार' कहा जाता है। इस अधिकार का आजकल बड़ा महत्व है; कारण, जो व्यक्ति व्यवस्थापक संस्थाओं के सदस्य होते हैं, वे मतदाताओं के इस अधिकार के प्रयोग से ही तो चुने जाते हैं। जिस दल के, या जिन विचारों वाले आदमियों के पक्ष में मत-दाताओं का बहुमत नहीं होता, वे प्रतिनिधि, अर्थात् व्यवस्थापक सभा के सदस्य नहीं बन सकते। इस प्रकार देश की व्यवस्था प्रत्यक्ष रूप से

व्यवस्थापक सभा के सदस्यों पर, और परोक्ष रूप से देश के निर्वाचकों या मतदाताओं पर निर्भर है।

जिन व्यक्तियों को मताधिकार होता है, वे यह अनुभव करते हैं कि राज्य शासन में हमारा भी कुछ भाग है, चाहे वह परोक्ष रूप से ही क्यों न हो। इसलिए यह आवश्यक है कि यह अधिकार देश के अधिक से अधिक व्यक्तियों को हो, केवल किसी विशेष श्रेणी, विशेष जाति, धर्म या पेशे वाले को न हो। इसमें अमीर ग़रीब, स्त्री पुरुष, मालिक मज़दूर, कृषक ज़मींदार, हिन्दू मुसलमान, आदि का विचार न होना चाहिए।

**किन्हें मताधिकार नहीं मिलना चाहिए?**— कुछ पाठक सोचते होंगे कि यह अधिकार सभी को, शत-प्रति-शत जनता को मिलना चाहिए, परन्तु तनिक विचार करने पर वे समझ जायँगे कि राष्ट्र के अपरिपक्व या विकृत अंगों को मताधिकार मिलना उचित नहीं है। इसी प्रकार से, उन्नत प्रजातंत्र राज्यों में भी बालकों (प्रायः अठारह-बीस वर्ष से कम आयु वालों) को तथा पागलों को अधिकार नहीं दिया जाता। कारण, साधारणतया उनमें नागरिक प्रश्नों पर विचार करके देश-हितार्थ उचित मत देने की योग्यता नहीं होती।

क़ैदियों का क़ैद रहना ही इस बात का प्रमाण माना जाता है कि उन्होंने राज्य के नियमों का उलंघन किया है। इस लिए उन्हें कुछ समय के लिए मताधिकार से वंचित कर दिया जाता है।

विदेशियों या अ-नागरिकों को भी प्रायः किसी देश में मताधिकार नहीं मिलता, क्योंकि इनकी अपने देश से जो सहानुभूति होती है, वह दूसरे राष्ट्र से होनी दुर्लभ है। इसी विचार से एक प्रान्त, ज़िले या नगर में बहुधा दूसरे प्रान्त, ज़िले या नगर के निवासियों को मताधिकार नहीं दिया जाता। परन्तु कुछ समय निवास करने तथा कुछ नियमों का पालन करने पर उन्हें यह अधिकार देदिया जाता है।

**निर्वाचक होने के अधिकारी**—उपर्युक्त व्यक्तियों को छोड़कर और कोई व्यक्ति निर्वाचक होने का अनाधिकारी नहीं माना जाना चाहिए। अब हम इस सम्बन्ध में कुछ विशेष विचार करते हैं। यह स्पष्ट है कि जो व्यक्ति राष्ट्र, प्रान्त, ज़िले या नगर आदि के अङ्ग हैं, अर्थात् उसके नागरिक हैं, और जिन्हें उसके नियमों से शासित होना है, उन सब को अपने-अपने क्षेत्र में मताधिकार मिलना आवश्यक है। अन्यथा यदि किसी खास श्रेणी के या विशेष स्वार्थ वाले व्यक्तियों को ही मताधिकार होगा, तो उनके द्वारा दूसरों पर अत्याचार होने की सम्भावना रहेगी। इस प्रकार मताधिकार देने में अमीर ग़रीब, या स्त्री पुरुष, मालिक मज़दूर, अथवा रङ्ग, जाति या धर्म आदि का विचार न होना चाहिए। हां, जैसा कि हम पहिले कहचुके हैं, एक शर्त ज़रूरी है; राष्ट्र के जो अङ्ग विकृत और अपरिपक्व हों अर्थात् जो व्यक्ति पागल या नाबालिग़ आदि हों, उन्हें इस

अधिकार से वंचित रक्खा जाना ही ठीक है, क्योंकि उनके द्वारा इसका दुरुपयोग होने की बहुत सम्भावना है। इस सिद्धान्त को सामने रखते हुए मताधिकार सम्बन्धी नियम बनने चाहिए। इस विषय की अन्य बातों को तो, कम से कम, सिद्धान्त रूप से सब लोग मानने लगे हैं, परन्तु स्त्रियों को मताधिकार मिलने के विषय में अभीतक भी बहुत मत भेद है। अतः इस पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

**स्त्रियों का मताधिकार**—स्त्रियों को मताधिकार मिलने का बड़ा विरोध रहा है। अब भी लोगों का अधिकांश में यही मत है कि स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र उनका घर है, राजनैतिक झंजटों में पड़ने से वे अपने गार्हस्थ कर्तव्यों से विमुख हो जायँगी। हम साधारणतः यह बात ज़रूर मानते हैं कि स्त्रियों को पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी, बच्चों की माता, तथा घर की मालकिन आदि के रूप में बहुत-कुछ कार्य करना आवश्यक है, परन्तु उनमें राज्य-कार्य में भाग लेने की जितनी योग्यता हो, उन्हें उसके उपयोग का अधिकार क्यों न दिया जाय!

कुछ लोगों का कथन है कि स्त्रियों को मताधिकार देने का अर्थ यह होगा कि पुरुषों ( उन स्त्रियों के पतियों ) को दो वोट मिल जायँगे, क्योंकि प्रायः प्रत्येक स्त्री, अपने पति के प्रभाव से उसकी ही इच्छानुसार मत देगी; यदि कभी ऐसा न हुआ तो पति पत्नी में विरोध होगा और घर की सुख शान्ति नष्ट हो जायगी। परन्तु, सोचना चाहिए कि शिक्षा-प्रचार की वृद्धि से

अधिकाधिक योग्य होकर क्या स्त्रियां अपना स्वतन्त्र मत स्थिर न कर सकेंगी ? यदि इस समय स्त्रियों का मत स्वतन्त्र नहीं होता या वे उसे प्रकट नहीं कर सकतीं, तो उनकी इस मानसिक अवस्था को सुधारने का एक उपाय भी तो उन्हें शिक्षा तथा मताधिकार देना ही है। पुनः, मत-भेद के कारण पति पत्नी में विरोध होने की बात में भी कुछ सार नहीं है। सच्चा प्रेम वही है, जो मत भेद के होते हुए भी रह सकता है, क्या इसका इस समय अभाव है ? क्या पिता पुत्र में, भाई भाई में अनेकशः मत-भेद नहीं होता और क्या इस मतभेद के होते हुए भी उनके परस्पर प्रेम-पूर्वक रहने के असंख्य उदाहरण विद्यमान नहीं हैं ? फिर, पति पत्नी के मत-भेद से ही घर को सुख-शान्ति के भङ्ग होने की आशंका क्यों की जाती है !

यद्यपि कुछ देशों में स्त्रियों को मताधिकार मिलता जा रहा है अभी तक बहुत ही कम को यह अधिकार मिल पाया है। प्रत्येक देश में मोटे हिसाब से जितने पुरुष होते हैं, उतनी ही स्त्रियाँ होती हैं, अर्थात् स्त्रियां कुल जन-संख्या की आधी होती हैं। प्रजातन्त्र या उत्तरदायी शासन पद्धति वाले राज्यों के इन आधे नागरिकों में से बहुत-सों को मताधिकार से वंचित रखना आश्चर्यजनक है। स्त्रियों की अल्पज्ञता का बहाना भी ठीक नहीं। जहाँ कहीं वे यथेष्ट योग्य न भी हों, वहाँ उन्हें योग्य बनाने का यत्न करना चाहिए। निदान, उन्हें मताधिकार से वंचित रक्खा जाना अनुचित है।

**निर्वाचकों की योग्यता; शिक्षा**—अब इस प्रश्न पर विचार करना है कि निर्वाचकों की योग्यता क्या हो। यह तो स्पष्ट ही है कि प्रत्येक निर्वाचक को राजनैतिक विषयों का पूर्ण ज्ञान होना तो सम्भव नहीं, परन्तु क्या उससे इतनी आशा भी न रक्खी जाय कि वह साधारण लिखना पढ़ना तथा हिसाब तो जानता हो ? अवश्य। इस लिए प्रत्येक व्यक्ति को इतनी शिक्षा पाने के लिए समुचित सुविधा मिलनी चाहिए। इसका यह आशय नहीं कि जब तक शिक्षा का यथेष्ट प्रचार न हो, तब तक सर्व साधारण को मताधिकार ही न मिले। प्रायः यह अनुभव हुआ है कि यह अधिकार मिल जाने पर शिक्षा-प्रचार भी अच्छी तरह हो सकता है। अस्तु, सर्व साधारण को शिक्षा-प्राप्ति की सुविधा तभी हो सकती है जब प्रत्येक म्युनिसिपैलटी, ज़िला-बोर्ड और पंचायत अपने-अपने क्षेत्र में प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार की यथेष्ट व्यवस्था करे। भारतवर्ष में अभी तक बहुत कम म्युनिसिपैलटियों ने अपने यहां यह शिक्षा अनिवार्य और निश्शुल्क की है। ज़िला-बोर्डों ने तो अपने क्षेत्र में इस ओर क़दम ही नहीं रक्खा है। हाँ, अब यह आशा होती है कि वे शीघ्र ऐसा करेंगे।

निदान, शिक्षा-प्राप्त न होने के आधार पर नागरिकों को साधारणतया मताधिकार से वंचित करना ठीक नहीं है। उन्हें म्युनिसिपल बोर्ड, ज़िला-बोर्ड तथा व्यवस्थापक सभाओं के लिए प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिलना ही चाहिए।

**श्रम और स्वावलम्बन**—कुछ लोगों का कथन है कि मताधिकार उन्हीं नागरिकों को मिलना चाहिए जो देश के लिए कुछ उत्पादक कार्य करते हों, अर्थात् श्रमजीवी और स्वावलम्बी हों। इस प्रकार, ख़ानदानी अमीर, पूँजीपति, सूदख़ोर, ज़मींदार और महन्त या मठाधीश आदि इस अधिकार से वंचित रहें। ऐसी पद्धति रूस में प्रचलित है। यद्यपि हम स्वावलम्बन को नागरिकों का एक आवश्यक गुण समझते हैं, और चाहते हैं कि कोई भी व्यक्ति केवल पैत्रिक या धर्मादे की सम्पत्ति के बल पर मौज न उड़ावे, तथापि हमारी सम्मति से वर्तमान पूँजी वालों को मताधिकार से वंचित रखना उचित नहीं।

**साम्पत्तिक योग्यता**—बहुत से देशों में निर्वाचकों के लिए कुछ सम्पत्ति के मालिक होना भी आवश्यक माना जाता है। साम्पत्तिक योग्यता की माप राज्य-कर या टैक्स देने से की जाती है।* इस विचार से वे ही व्यक्ति व्यवस्थापक संस्थाओं के लिए अपने प्रतिनिधि चुन सकते हैं जो निर्धारित परिमाण में कर देते हों; इसके विपरीत, जो उतना कर या टैक्स नहीं देते, उन्हें प्रतिनिधि-निर्वाचन में मताधिकार नहीं होता। ऐसे नियम के

* इस की तह में यह भाव है कि सम्पत्ति वालों से शान्ति रखने और नियम-पालन की विशेष आशा होती है। इसके प्रतिकूल, जो आदमी टैक्स नहीं देते, उन में नये टैक्स लगाने के समय यथेष्ट विवेक रहने की सम्भावना कम है।

होने से बहुत-से नागरिक दिमाग़ी योग्यता रखते हुए भी इस अधिकार से वंचित रहते हैं। यह बहुत अनुचित है। हमारी समझ से मताधिकार के लिए साम्पत्तिक योग्यता की कसौटी इस अर्थवाद के युग का एक अत्याचार है। जो आदमी देश-हित के प्रश्नों पर भली भांति विचार करने के योग्य है, उसे केवल निर्धारित सम्पत्ति न रखने के कारण ही, मताधिकार से वंचित न किया जाना चाहिए।

**बालिग़ मताधिकार**—इस प्रकार निर्वाचक होने के लिए किसी प्रकार की सम्पत्ति होने या उसके कुछ शिक्षित होने आदि की शर्त रखना अनुचित है। नाबालिग़, पागल या अपराधी आदि जिन व्यक्तियों को हमने निर्वाचक होने का अनधिकारी बताया है, उन्हें छोड़ कर अन्य सब व्यक्तियों को मताधिकार मिलना चाहिए। इसे बालिग़ मताधिकार कहा जाता है। सभ्य और उन्नत देशों में यही प्रचलित होता है; वहां यदि शिक्षा या सम्पत्ति की कोई शर्त रहती है तो वह इतनी न्यून रहती है कि उसके होते हुए भी अधिकांश बालिग़ आदमी अपने इस अधिकार का उपयोग कर सकते हैं। वहां साधारण शिक्षा की शर्त रहती है तो लगभग ६०, ६५ प्रतिशत जनता के शिक्षित होने के कारण, वहां के आदमी उक्त शर्त के कारण मताधिकार से वंचित नहीं होते। इसी प्रकार, सम्पत्ति भी उतनी ही अनिवार्य समझी जाती है, जितनी वहां प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के पास होती है।

सन् १९३५ ई० के शासन विधान के अनुसार यहां ब्रिटिश

भारत के लगभग साढ़े तीन करोड़ पुरुष स्त्रियों का अर्थात् चौदह प्रतिशत जनता को, अथवा बालिग़ व्यक्तियों में से लगभग अठाईस प्रतिशत को मताधिकार प्राप्त हुआ है।

सरकारी अधिकारियों के इस कथन में कोई सार नहीं है कि भारतवासी बालिग़ मताधिकार का उपयोग नहीं कर सकेंगे। यह ठीक है कि भारतवर्ष में शिक्षा का प्रचार, और फलतः शिक्षितों की संख्या अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। परन्तु इसका उत्तरदायित्व तो विशेषतया सरकार पर ही है, उसके लिए लोगों को अपने आवश्यक प्राथमिक अधिकार से वंचित क्यों किया जाय! किन्तु, जैसा कि हम पहिले बता चुके हैं यह कोई बात नहीं है कि केवल शिक्षित या पढ़े-लिखे आदमी ही इस अधिकार का उपयोग कर सकते हैं। साधारण अपठित भारत-वासी भी अपनी प्राचीन पंचायत प्रथा से अनभिज्ञ नहीं हैं। वे यह सहज ही जान सकते हैं कि मताधिकार का क्या महत्व है, और कैसे आदमी को मत दिया जाना चाहिए; इत्यादि।*

---

* यद्यपि कभी-कभी ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं कि अशिक्षित मनुष्य को अपने अभीष्ट उम्मेदवार का नाम याद नहीं रहता और इससे निर्वाचन-अफ़सर को उसका मत लेने के कुछ क़ानूनी कठिनाई होती है, ( पिछले निर्वाचन में एक मतदाता से उसके अभीष्ट उम्मेदवार का नाम पूछे जाने पर उसने कहा था कि मैं महात्मां गांधी को मत देता हूं, एक दूसरे ने कहा था कि मैं कांग्रेस को मत देता हूं ), पर ये उदाहरण अपवाद स्वरूप हैं, और इनसे पूर्वोक्त बात में कुछ अन्तर नहीं आता।

कुछ लोगों का मत है कि बालिग़ मताधिकार म्युनिसिपैलटियों, ज़िला-बोर्डों और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं के सदस्यों के निर्वाचन के लिए ही ठीक हो सकता है; केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाओं के सदस्यों के चुनाव के लिए, वे विशेषतया भारतवर्ष जैसे बड़ी जन-संख्या वाले देश में, बालिग़ मताधिकार के अनुसार कार्य करने में बहुत कठिनाइयां होने के कारण, इसे ठीक नहीं समझते। उनका कथन है कि भारतवर्ष के प्रस्तावित संघ शासन में, ब्रिटिश भारत के, * राज्य परिषद् के सदस्यों की संख्या १५० और संघीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों की संख्या २५० निर्धारित की गई है। ब्रिटिश भारतवर्ष की जन संख्या पच्चीस करोड़ से अधिक है। इस प्रकार संघीय व्यवस्थापक सभा में लगभग दस लाख और राज्य परिषद् में लगभग १६ लाख व्यक्तियों का एक-एक प्रतिनिधि है। यदि निर्वाचन प्रत्यक्ष हो और साथ ही बालिग़ मताधिकार की प्रणाली व्यवहृत हो तो संघीय व्यवस्थापक सभा के लिए लगभग पांच लाख और राज्य परिषद् के लिए लगभग आठ लाख निर्वाचकों को एक-एक प्रतिनिधि के निर्वाचन में भाग लेना होगा। क्या यह व्यवहारिक है? क्या एक उम्मेदवार का इतने निर्वाचकों के सम्पर्क में आना

---

* देशी राज्यों के प्रतिनिधियों के जनता द्वारा निर्वाचित होने की व्यवस्था न होने के कारण, यहां केवल ब्रिटिश भारत का उदाहरण लिया गया है। यदि वे निर्वाचित होने लगें तो समस्त भारतवर्ष के प्रतिनिधियों का विचार, इसी प्रकार हो सकता है।

( व्यक्तिगत रूप से, एजन्टों द्वारा अथवा समाचार पत्रों आदि द्वारा भी ) सम्भव है ?

इसका उत्तर यह है कि व्यापक मताधिकार के व्यवहार में उम्मेदवार को पृथक् पृथक् निर्वाचकों के सम्पर्क में आने की आवश्यकता नहीं। उसके लिए केवल यह जान लेना पर्याप्त है कि किस-किस दल की ओर से उम्मेदवार खड़े किये गये हैं, कौन-कौन से राजनैनिक या नागरिक विषय विचारणीय हैं, तथा कैसी-कैसी समस्याएं निकट भविष्य में उपस्थित होने वाली हैं, उनके सम्बन्ध में किस दल की क्या नीति है, और किस की नीति अधिकतम लाभकारी होगी। इस प्रकार आधुनिक निर्वाचनों में मतदाताओं को उम्मेदवार चुनने में व्यक्तियों की अपेक्षा दलों का विचार करना बेहतर है। इसमें उम्मेदवारों को भी यह सुभीता है कि उन्हें अपने पक्ष में प्रचार करने के लिए, हज़ारों या लाखों मतदाताओं से अलग अलग और बार-बार मिलने के वास्ते दौड़-धूप नहीं करनी पड़ती, और न उनके एजन्टों को ही इस कार्य में अपरिमित द्रव्य और शक्ति लगानी पड़ती है। प्रत्येक दल की ओर से उसकी नीति स्पष्टतया घोषित होजाने से मतदाताओं को आवश्यक बातें मालूम होजाती हैं, और जिस दल की नीति को वे पसन्द करते हैं, उस दल के उम्मेदवार के पक्ष में अपना मत दे सकते हैं। इस प्रकार, भिन्न-भिन्न दलों की ओर से संगठित रूप से प्रचार कार्य बहुत मितव्ययिता-पूर्वक हो सकता है।

मतदाताओं की संख्या-वृद्धि से घबराने की कोई बात नहीं नहीं है। इस समय भी अनेक दशाओं में कई-कई ज़िलों का एक निर्वाचक संघ है। बालिग़ मताधिकार की व्यवस्था होने पर निर्वाचन-क्षेत्र का बढ़ना आवश्यक नहीं है, केवल मत-दाताओं की संख्या बढ़ेगी। इसके लिए निर्वाचन-स्थानों (पोलिंग स्टेशनों) और कर्मचारियों की व्यवस्था अधिक करनी होगी। इसमें सरकारी खर्च भी कुछ बढ़ेगा। परन्तु लोक-सत्ता-त्मक भावों के प्रचार के लिए, और सर्व साधारण को नागरिकता सम्बन्धी शिक्षा देने के वास्ते यह कार्य आवश्यक और उपयोगी ही है। अधिकारियों का यह तर्क निरर्थक है कि मतदाताओं की संख्या अधिक होजाने पर यहां मतों की गणना करने के लिए आवश्यकतानुसार योग्य और ईमानदार कार्यकर्ताओं की कमी रहेगी, तथा निर्वाचन-स्थानों का सुप्रबन्ध करने में असुविधा होगी। अस्तु, देश में राजनैतिक जागृति का कार्य यथेष्ट रूप से होने देने के लिए बालिग़ मताधिकार की व्यवस्था होनी चाहिए।

स्मरण रहे कि बालिग़ मताधिकार का उपयोग साधारण निर्वाचक संघों में ही होता है, विशेष में नहीं। विशेष निर्वाचक सघों में निर्धारित पद या योग्यता वाले व्यक्ति ही मत दे सकते हैं।

अब हम यह बतलाते हैं कि मतदाता अपने मताधिकार का उपयोग किस प्रकार कर सकते हैं।

**निर्वाचक सूची**—प्रत्येक निर्वाचक संघ के लिए एक-एक निर्वाचक सूची साधारणतः चुनाव से तीन-चार महीने पहिले, तैयार कीजाती है। इसके लिए ख़ास अफ़सर नियुक्त किये जाते हैं। वे अपने निर्वाचन-क्षेत्र के अन्दर ऐसे व्यक्तियों का नाम जानने का प्रयत्न करते हैं, जो उस निर्वाचक संघ में निर्वाचक होसकते हों और जिन में इस अध्याय में पहिले बताई हुई अयोग्यताएं न हों।

म्युनिसिपैलटियों की निर्वाचक सूची के सम्बन्ध में यह नियम है कि यदि एक म्युनिसिपैलटी निर्वाचन कार्य के लिए 'वार्डों' ( Wards ) या हल्क़ों में विभक्त हो तो प्रत्येक वार्ड की पृथक् पृथक्, एक-एक निर्वाचक सूची तैयार कीजाती है। कोई आदमी अपना नाम एक से अधिक निर्वाचक सूची में दर्ज नहीं करा सकता। जिन आदमियों का नाम किसी वार्ड की निर्वाचक सूची में दर्ज होता है, वे ही उस वार्ड के उम्मेदवार के लिए अपना मत दे सकते हैं।

ज़िला-बोर्डों की निर्वाचक सूची के सम्बन्ध में यह नियम है कि कोई व्यक्ति एक ही ज़िले में, एक से अधिक निर्वाचक सूची में अपना नाम दर्ज नहीं करा सकता, चाहे उसे उस ज़िले में एक से अधिक सर्कलों ( Circles ) या हल्क़ों में मत देने की योग्यताएं प्राप्त क्यों न हों। सर्कल या हल्के ज़िले की तह-सीलों के वे भाग होते हैं, जिनमें निर्वाचन कार्य के लिए तहसील

विभक्त की जाती हैं। प्रत्येक तहसील में उतने हलक़े रक्खे जाते हैं, जितने सदस्य उस तहसील के साधारण निर्वाचक संघ से निर्वाचित करने होते हैं।

प्रायः यह देखा गया है कि यहां साधारण जनता अपने मताधिकार के महत्व को अच्छी तरह नहीं समझती। अधिकांश पढ़े लिखे व्यक्ति भी यह जानने का प्रयत्न नहीं करते कि उन्हें वर्तमान नियमों के अनुसार किसी व्यवस्थापक संस्था, अथवा म्युनिसिपैलटी या ज़िला-बोर्ड के निर्वाचन में मताधिकार प्राप्त होसकता है या नहीं। जो थोड़े-बहुत व्यक्ति यह जानते भी हों कि उन्हें निर्वाचन अधिकार प्राप्त हो सकता है, वे निर्वाचक सूची प्रथम बार प्रकाशित होने पर निर्धारित समय के अन्दर यह जानने का प्रयत्न नहीं करते कि उनका नाम निर्वाचक सूची में दर्ज कर लिया गया है, या नहीं। इस प्रकार बहुत-से व्यक्ति निर्वाचक की योग्यता रखते हुए भी निर्वाचक के अधिकार से वंचित रह जाते हैं, क्योंकि निर्वाचन के समय वे ही व्यक्ति मत दे सकते हैं, जिन का नाम निर्वाचक सूची में दर्ज हो।

हम पाठकों से अनुरोध करते हैं कि यदि वे किसी व्यस्थापक संस्था, म्युनिसिपैलटी या ज़िला-बोर्ड के निर्वाचक हो सकते हों, और यदि उनका नाम प्रथम निर्वाचक सूची में दर्ज न किया गया हो तो वे प्रथम निर्वाचक सूची के प्रकाशित होने से निर्धारित समय के अन्दर, दर्ख़ास्त देकर अपना नाम निर्वाचक सूची में दर्ज करालें।

**संशोधित निर्वाचक सूची**--प्रथम निर्वाचक सूची, तैयार होने पर, प्रकाशित की जाती है। यह प्रायः अपूर्ण रहती है। यदि किसी ऐसे व्यक्ति का नाम इस सूची में न दर्ज किया गया हो, जिसे निर्वाचन का अधिकार है, तो वह निर्धारित समय के अन्दर, दर्ख़ास्त देकर इसमें अपना नाम दर्ज करा सकता है। यदि किसी ऐसे व्यक्ति का नाम उस सूची में दर्ज होगया है, जिसे नियमों के अनुसार निर्वाचन अधिकार प्राप्त न हो, या जिसमें इस अध्याय में पहिले बताई हुई अयोग्यताएं हों, तो ऐसे व्यक्ति का नाम निर्धारित समय के अन्दर दर्ख़ास्त दिये जाने पर निर्वाचक सूची से निकाला जा सकता है। यह दर्ख़ास्त वे ही व्यक्ति दे सकते हैं जिनका नाम निर्वाचक सूची में दर्ज हो।

निर्धारित समय के पश्चात संशोधित निर्वाचक सूची प्रकाशित की जाती है; जिन व्यक्तियों के नाम इसमें दर्ज होते हैं, वे ही निर्वाचन के समय अपना मत दे सकते हैं। निर्वाचक सूची में प्रत्येक निर्वाचक का नम्बर, नाम, उसके पिता का नाम, और पता रहता है। निर्वाचकों को अपना नम्बर याद रहने से मत देने में सुभीता रहता है।

**निर्वाचकों का कर्तव्य**--निर्वाचक सूची में मतदाता के नाम का समावेश हो जाने पर निर्वाचन कार्य सम्बन्धी अगली मंज़िल यह है कि निर्वाचक अपना मत देने के सम्बन्ध में अपने

उचित कर्तव्य का पालन करे। खेद है कि वर्तमान दशा में बहुत से निर्वाचक किसी सम्पन्न या प्रभावशाली व्यक्ति के लोभ अथवा लिहाज़ में आजाते हैं, अथवा तुच्छ साम्प्रदायिक विचारों में फंस जाते हैं। इससे यह अपना मत योग्य सज्जनों को नहीं देते और, अयोग्य उम्मेदवार प्रतिनिधि बन जाते हैं। नये नये टैक्स लगते हैं, मन माना ख़र्च होता है, और नागरिकों की उन्नति के यथेष्ट उपाय नहीं किये जाते। इस प्रकार तमाम शासन यंत्र बिगड़ जाता है। इसके वास्तविक दोषी वे निर्वाचक होते हैं जिन्होंने अपने मताधिकार का दुरुपयोग किया है। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि निर्वाचक अपना कर्तव्य भली भांति पालन करें। साथ ही, वे इस बात को भी निरीक्षण करते रहें कि कहीं मत बेचने या ख़रीदने का पाप-कर्म, अथवा निर्वाचन सम्बन्धी कोई अन्य अनियमित कार्रवाई तो नहीं होरही है। यदि ऐसा जान पड़े तो वे अपराधियों को न्यायालय से यथा-शक्ति समुचित दंड दिलावें।

**मत कैसे आदमी को दिये जायँ ?**— निर्वाचकों को चाहिए कि वे ऐसे सज्जन को ही मत देकर अपना प्रतिनिधि चुनें, जो समुचित रूप से योग्य, अनुभवी तथा उदार और सुधारक हो; निस्वार्थ-सेवा, त्याग और कष्ट-सहन का उच्च आदर्श रखता हो। उसकी जाति-पांति का विचार करना ठीक नहीं। किसी की मीठी या लम्बी बातों का बिश्वास न कर उसके पहिले किये हुए कार्यों तथा व्यवहार और आचरण पर विचार करना

चाहिए। इस बात का भी ध्यान रहना आवश्यक है कि वह निर्भीक, और स्वतन्त्र प्रकृति का हो, खुशामदी, अधिकारियों के रौब से दबने वाला, तथा उन्हें मान-पत्र देने आदि में सार्व-जनिक द्रव्य लुटाने वाला न हो।

मतदाताओं को ध्यान रखना चाहिए कि जिस व्यक्ति को मत देकर वे अपना प्रतिनिधि बनाते हैं, वह जो कुछ व्यवस्थापक सभा में कहेगा, वह उनकी तरफ से कहा हुआ समझा जायगा। प्रत्येक नागरिक का एक-एक मत बहु-मूल्य है, वह किसी भी दशा में, अयोग्य व्यक्ति के पक्ष में नहीं दिया जाना चाहिए। *

**मत देने में उपेक्षा न की जाय**—कुछ नागरिक, निर्वाचन के अवसर पर, मत देने के लिए जाते ही नहीं। यह उचित नहीं है। उनकी उपेक्षा से सम्भव है, योग्य उम्मेदवारों के वास्ते मतों में कमी रह जाय, और अयोग्य उम्मेदवार व्यवस्थापक सभा के सदस्य बन जायँ, जिसका दुष्परिणाम सब नागरिकों को अगले निर्वाचन तक—तीन-चार या अधिक वर्ष तक—भुगतना पड़े। अस्तु, मतदाता की हैसियत से नागरिकों का कर्तव्य है कि वे अपने मत का अवश्य उपयोग करें, मत देने में कभी उपेक्षा न करें। मत किस प्रकार दिये जाते हैं, यह आगे सातवें अध्याय में बतलाया जायगा।

---

* इस सम्बन्ध में कुछ विशेष बातों पर ब्यौरेवार विचार परिशिष्ट के लेख में प्रकट किये गये हैं।

# * छठा अध्याय *

## ❀ उम्मेदवार ❀

" उत्तरदायी शासन की सफलता प्रतिनिधियों की योग्यता पर निर्भर है।"
— लेखक

**उम्मेदवार किसे होना चाहिए ?**—किसी व्यवस्थापक सभा अथवा म्यूनिसिपैलटी या ज़िला-बोर्ड की मेम्बरी के लिए उम्मेदवार यथा-सम्भव नागरिक और ग़ैर-सरकारी व्यक्ति ही होने चाहिएँ; विदेशियों या अ-नागरिकों तथा सरकारी आद-मियों से प्रायः जनता की उतनी हितैषिता की आशा नहीं की जा सकती।

कुछ देशों में उम्मेदवार के पास कुछ सम्पत्ति होना भी आवश्यक समझा जाता है। इसके पक्ष में यह कहा जाता है कि निज की सम्पत्ति होने से उन्हें आर्थिक बातों का अधिक ज्ञान, तथा स्वार्थवश देश-रक्षा की अधिक चिन्ता रहेगी। परन्तु इस कथन में कुछ सार नहीं। बहुधा अपने परिश्रम से जीवन-संग्राम की कठिनाइयों का सामना करने वालों में, धनिकों की अपेक्षा अनुभव और ज्ञान विशेष पाया जाता है। रही, देश-रक्षा आदि की बात, सो धनिकों ने ही उसका पट्टा नहीं लिखा लिया है,

साधारण श्रेणी के आदमी भी वैसे ही, तथा उनसे भी अधिक, देश-प्रेमी हो सकते हैं।

उम्मेदवार काफ़ी उम्र के, बहुत गम्भीर, योग्य, निर्भीक, और अनुभवी होने के अतिरिक्त, ऐसे व्यक्ति होने चाहिएँ जो लोभ-रहित हों, और निस्स्वार्थ भाव से काम कर सकें। वास्तव में ऐसे उम्मेदवार अच्छे होते हैं जिन में सांसारिक प्रतिस्पर्द्धा, या रुपये कमाने की वासना न हो, और जो सार्वजनिक कार्य में निश्चिन्तता-पूर्वक अपना समय दे सकें। *

अब हम यह बतलाते हैं कि किसी व्यक्ति को उम्मेदवार होने के लिए क्या क्या कार्य करने चाहिएँ।

**उम्मेदवारी का प्रस्ताव-पत्र**—निर्वाचन के निर्धारित समय से पूर्व सरकार एक विज्ञप्ति निकाल कर निश्चय करती है, कि अमुक दिन तक कोई निर्वाचक किसी व्यक्ति के उम्मेदवार होने का प्रस्ताव, एक निर्धारित फ़ार्म पर लिख कर दे सकता है। इस प्रस्ताव का एक अन्य निर्वाचक द्वारा समर्थन होना आवश्यक है। जो व्यक्ति उम्मेदवार होना चाहता है, उसकी लिखित

* प्रायः व्यवस्थापक सभा के सदस्यों को, उन दिनों के लिए, जिनमें सभा का अधिवेशन होता है, काफ़ी भत्ता और सफर-खर्च दिया जाता है। कुछ दशाओं में सदस्यों के वास्ते ऐसा भत्ता निश्चय कर दिया जाता है, जो उन्हें प्रति मास मिलता रहता है, चाहे उस मास में सभा का, या उसकी किसी कमेटी का अधिवेशन हो या न हो।

अनुमति भी उसमें रहनी चाहिए। जिस फ़ार्म पर यह प्रस्ताव किया जाता है, उसे बड़ी सावधानी से भरा जाना चाहिए। उसमें कुछ ग़लती होने पर वह नामज़दगी-अफ़सर अर्थात् ' नोमीनेशन आफ़िसर ' द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है।

जो व्यक्ति उम्मेदवार होना चाहे, उसे चाहिए कि प्रस्ताव-पत्र का एक ही फ़ार्म भर कर सन्तुष्ट न रहे, वरन् भिन्न-भिन्न निर्वाचकों द्वारा भरे हुए कई फ़ार्म भिजवादे, जिससे कुछ फ़ार्म अस्वीकृत होने पर भी कम-से-कम एक तो स्वीकृत हो सके। स्मरण रहे कि एक ही व्यक्ति कई निर्वाचक संघों से भी उम्मेद-वार हो सकता है।

उम्मेदवारी के प्रस्ताव-पत्र, नामज़दगी-अफ़सर द्वारा, एक निर्धारित दिन लिये जाते हैं। जो प्रस्ताव-पत्र अन्तिम निर्धारित दिन नहीं दिये जाते, वे अस्वीकृत कर दिये जाते हैं। इस लिए उम्मेदवार होने वालों को ये प्रस्ताव-पत्र उक्त समय से पूर्व ही भिजवा देने की पूरी व्यवस्था कर देनी चाहिए।

**उम्मेदवार का एजंट**—उम्मेदवार को यह लिखित सूचना देनी होती है कि वह किसे अपना निर्वाचन-एजंट नियत करता है, या वह स्वयं ही एजंट के काम को करना स्वीकार करता है।

एजंट अच्छा योग्य होना चाहिए। कोई ऐसा व्यक्ति ऐजंट

नहीं बनाया जाना चाहिए, जो किसी निर्वाचन सम्बन्धी अपराध के लिए दोषी ठहराया गया हो, या जिसने कभी उम्मेद्वार होकर निर्वाचन-व्यय का झूठा हिसाब दिया हो, अथवा हिसाब न दिया हो।

**उम्मेदवार की ज़मानत**—जो व्यक्ति किसी निर्वाचक-संघ से खड़ा होना चाहता है, उसे कुछ रुपये ज़मानत के रूप में, निर्धारित समय के अन्दर जमा करने होते हैं। * यदि वह ऐसा न करे तो उसके उम्मेदवारी के प्रस्ताव-पत्र पर कुछ विचार नहीं किया जाता, वह अस्वीकार कर दिया जाता है।

प्रान्तीय सरकार उम्मेदवारी के प्रस्ताव-पत्रों की जांच करने के लिए एक दिन निश्चय करती है, और इस दिन की सूचना उम्मेदवार होने वाले व्यक्तियों को दी जाती है। यदि कोई व्यक्ति चाहे तो इस जाँच के दिन के बाद निर्धारित समय तक अपनी उम्मेदवारी का प्रस्ताव-पत्र वापिस ले सकता है। इस दशा में उसे ज़मानत के रुपये वापिस मिल जाते हैं।

**उम्मेदवार होने की घोषणा**—एक निर्धारित दिन, उम्मेदवार होने वाले व्यक्तियों की उपस्थिति में, उनके प्रस्ताव-पत्रों की जाँच, नामज़दगी-अफ़सर द्वारा, की जाती है। जिन

* जो उम्मेदवार निर्वाचित नहीं होते, उनके लिए यदि निर्धारित मतों से कम प्राप्त होते हैं तो उनकी ज़मानत ज़ब्त हो जाती है।

प्रस्ताव-पत्रों में कुछ ग़लतियां पायी जाती हैं; वे अस्वीकार कर दिये जाते हैं, और जिन व्यक्तियों के प्रस्ताव-पत्र ठीक पाये जाते हैं, उनके उम्मेदवार होने की घोषणा कर दी जाती है।

यदि किसी निर्वाचक संघ के उम्मेदवारों की संख्या उतनी ही हो जितने उस संघ के प्रतिनिधि हो सकते हैं या जितने प्रतिनिधियों के लिए जगह ख़ाली हो, तो वे सब उम्मेदवार उस निर्वाचक संघ के निर्वाचित सदस्य, अर्थात् प्रतिनिधि समझे जाते हैं, और उस निर्वाचक संघ के निर्वाचकों को अपना मत देने की आवश्यकता नहीं रहती।

यदि उम्मेदवारों की संख्या उस निर्वाचक संघ के अभीष्ट प्रतिनिधियों की संख्या से अधिक हो, तो प्रान्तीय सरकार से निर्धारित किये हुए दिन, निर्वाचन होता है।

अब हम यह बतलाते हैं कि उम्मेदवार हो जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सफलता के लिए, उम्मेदवार होने के समय से निर्वाचन के समय तक, आधुनिक पद्धति के अनुसार, क्या क्या कार्य करने चाहिएँ।

**उम्मेदवार के एजेंट, और ख़र्च का हिसाब**—यदि उम्मेदवार ने उस निर्वाचक संघ की, जहाँ से वह उम्मेदवार हुआ है, निर्वाचक-सूची पहिले प्राप्त नहीं की है, तो उसे वह शीघ्र प्राप्त कर लेनी चाहिए। उसे विश्वास-पात्र और योग्य

व्यक्तियों को अपने एजेंट नियत करने चाहिएँ। इन कर्मचारियों की संख्या निर्वाचन-क्षेत्र की सीमा, और निर्वाचन-कार्य की गुरुता पर निर्भर है। उम्मेदवार को चाहिए कि वह अपने कर्मचारियों को इस बात की ताकीद कर दे कि वे उसकी लिखित स्वीकृति के बिना कुछ ख़र्च न करें, और जो-कुछ ख़र्च करें उसका पूरा-पूरा, रसीद सहित, हिसाब रक्खें, तथा उसे वे बराबर उस ( उम्मेदवार ) के पास भेजते रहें, और कभी कोई ऐसा ख़र्च न करें जो निर्वाचन-कार्य के लिए ग़ैर-क़ानूनी माना जाता है।

जिस दिन से उम्मेदवार निर्वाचन के लिए कार्य आरम्भ करे, उसी दिन से उसे निर्वाचन सम्बन्धी व्यय का पूरा-पूरा हिसाब रखना चाहिए। ख़र्च करते समय इस बात का सदैव ध्यान रखा जाय कि कोई ख़र्च अनुचित तो नहीं हो रहा है।

**ग़ैर-क़ानूनी ख़र्च**—निर्वाचन कार्य के लिए, निम्न लिखित कार्यों का ख़र्च ग़ैर क़ानूनी माना है।

१—मत प्राप्त करने के लिए, या अपने प्रतियोगी किसी उम्मेदवार को मत न देने के लिए, अथवा मत देने में सर्वथा उदासीन रहने के लिए रिशवत देना, या जल-पान या भोजन आदि कराना, या दावत देना।

२—ऐसे कमरे का उपयोग करना, या किराये पर लेना, जहां शराब बेची जाती हो।

३—किसी प्रतियोगी उम्मेदवार को अपना नाम उम्मेदवारी से वापिस लेने के लिए रिशवत देना।

**उम्मेदवार का सूचना-पत्र**— उम्मेदवार को चाहिए कि वह एक सूचना-पत्र प्रकाशित कराये, जिससे यह स्पष्ट रूप से प्रकट हो कि यदि वह ( उम्मेदवार ) निर्वाचित होजाय तो वह प्रतिनिधि की हैसियत से क्या-क्या कार्य करेगा। यह सूचना-पत्र बहुत सावधानी से तैयार किया जाना चाहिए। यदि उम्मेदवार किसी दल ( पार्टी ) की ओर से खड़ा हुआ हो तो उसे उस दल की नीति के अनुसार ही अपना सूचना-पत्र प्रकाशित कराना चाहिए, और इसमें उस दल द्वारा प्रकाशित सूचना-पत्र से आवश्यक सहायता लेनी चाहिए। यदि उम्मेदवार किसी दल विशेष की ओर से खड़ा न होकर स्वतंत्र रूप से ही खड़ा हुआ है तो उसे अपने सूचना-पत्र में वे ही बातें लिखनी चाहिएँ जिन्हें वह भली भांति करने में समर्थ हो। बहुत से उम्मेदवार अपनी शक्ति तथा परिस्थिति का विचार न कर अपने सूचना-पत्रों में बातें खूब बढ़ा-चढ़ा कर लिख देते हैं। वे जैसे-भी-बने मत-दाताओं को अपने पक्ष में आकर्षित करने के अभिलाषी होते हैं, और निर्वाचन में विजयी होजाने पर अपने सूचना-पत्रों में लिखी हुई बातों को पूरा करने का भरसक प्रयत्न नहीं करते, अथवा प्रयत्न करने पर भी उन्हें इस लिए पूरा नहीं कर सकते कि वे लिखी ही बहुत बढ़ा कर गयी थीं। यह ठीक नहीं है। अन्यान्य नागरिकों की भांति, उम्मेदवारों को भी अपनी बात का

पक्का होना चाहिए । सूचना-पत्र में लिखी हुई बातें प्रतिज्ञा-स्वरूप होती हैं, और किसी आदमी का ऐसी प्रतिज्ञा करना, अनुचित और अनैतिक है, जिसे पूर्ण करने के विषय में वह अपनी असमर्थता को पहिले से ही भली भांति जानता, या अनुमान कर सकता हो ।

यदि आवश्यक हो तो प्रथम सूचना-पत्र के बाद उम्मेदवार और भी सूचना-पत्र प्रकाशित कराये। यदि किसी अन्य उम्मेद-वार ने उस पर, अथवा उसके दल की नीति पर, कोई व्यर्थ आक्षेप किया हो, तो उसका उत्तर देदेना चाहिए। परन्तु उम्मेद-वार के सूचना-पत्रों की भाषा और भाव सदैव सौजन्यता-पूर्ण रहने चाहिएँ, उनमें शिष्टाचार का पूर्ण ध्यान रख जाना चाहिए; उम्मेदवार को व्यक्तिगत 'तू-तू मैं-मैं' कदापि न करनी चाहिए। उम्मेदवार को अपने प्रत्येक सूचना--पत्र का अपने निर्वाचन--क्षेत्र में यथेष्ट प्रचार करने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए ।

**उम्मेदवार के कार्य**--आधुनिक पद्धति के अनुसार, उम्मेदवार को यह भी चाहिए कि जहां तक होसके वह स्वयं निर्वाचकों के पास जाये और उनके अधिक से अधिक मत प्राप्त करने का प्रयत्न करे। इस कार्य में वह अपने एजंटों से सहा-यता लेसकता है । उसे अपने निर्वाचन-क्षेत्र में सभाएँ करनी चाहिएँ और वहां योग्य व्यक्तियों द्वारा व्याख्यान दिला कर, या स्वयं व्याख्यान देकर निर्वाचकों का मत प्राप्त करने का प्रयत्न

करना चाहिए। यदि होसके तो उसे सभा में आये हुए व्यक्तियों को प्रश्न पूछने का अवसर देना चाहिए। इन प्रश्नों का उत्तर वह बड़ी सावधानी से देवे। उम्मेदवार को समाचार-पत्रों में समयोचित लेख भेज कर अथवा भिजवा कर भी अपने कार्य से सहायता लेनी चाहिए।

निर्वाचन के दिन उम्मेदवार को विशेष कार्य करना होता है। उसे चाहिए कि उस दिन मत देने के सब स्थानों अर्थात 'पोलिंग स्टेशनों' पर अपने कर्मचारी भेजदे, जो मतदाताओं को उनका नम्बर बताऐं तथा उन्हें मत देने का स्थान पर लेजायँ। उम्मेद-वार कुछ-कुछ समय सभी पोलिंग स्टेशनों पर रहने का प्रयत्न करे। उसका एक-एक एजन्ट तो प्रत्येक मत लेने वाले अफसर के पास उपस्थित रहे और, मत देने के लिए, आने वाले निर्वा-चकों की पहिचान या शनाख्त में सहायता दे।

निदान, आधुनिक पद्धति में, यह आवश्यक है कि उम्मेदवार अपने पक्ष में, प्रचलित क़ानून का ध्यान रखते हुए, निर्वाचकों के अधिक से अधिक मत संग्रह करे। सम्भव है, वह अपने प्रतियोगी उम्मेदवार से केवल एक ही मत की कमी के कारण हार जाय। इसलिए ज़रूरी है कि कोई उम्मेदवार यथा-शक्ति अपने एक भी निर्वाचक की ओर से उदासीन न रहे। उसे और उस के कर्मचारियों को अधिक से अधिक निर्वाचकों का मत संग्रह करने के लिए यथेष्ट परिश्रम करना चाहिए।

**आन्दोलन की मर्यादा**—परन्तु अन्य आन्दलनों कीभांति निर्वाचन आन्दोलन भी एक मर्यादा के अन्दर ही रहना उचित है। वह मर्यादा कदापि उलंघन न की जानी चाहिए। आज कल कुछ उम्मेद्वार अपने वार्ड या निवास-स्थान, अथवा जाति या धर्म के नाम पर निर्वाचकों से अपील करते हैं, या अपने प्रभाव या शक्ति का बखान करते हैं। उदाहरणवत एक उम्मेदवार अपनी जाति के मत दाताओं से कहता है, "आशा है कि तुम अपने जाति-प्रेम का परिचय दोगे, और ग़ैर आदमियों से अपने जाति-भाई को हर दशा में अच्छा समझोगे", । दूसरा, अपने सहधर्मियों से निवेदन करता है, "हमारा तुम्हारा इष्टदेव एक ही है, वह ( दूसरा प्रतियोगी उम्मेद्वार ) तो नास्तिक या विधर्मी है। उसके पक्ष में मत देना तो महा-पाप है।" कोई-कोई जमींदार उम्मेदवार अपने किसानों से कहता है "ख़बरदार! तुम लोगों में से किसी ने भी दूसरे उम्मेद्वार को मत दिया तो देख लिये जाओगे। मुझसे तो हमेशा ही काम है न?।" कुछ उम्मेदवार निर्वाचकों को तरह-तरह की सौगन्ध दिलाकर अनुरोध करते हैं, कि आप मेरे ही पक्ष में मत दीजिए। कोई-कोई उम्मेद्वार किसी मतदाता से मिलने पर उससे इस बात का बचन लेना या प्रतीज्ञा कराना चाहता है कि वह उसी ( उम्मेद्-वार ) के लिए मत देगा; और अगर मत-दाता इस बात का विश्वास नहीं दिलाना चाहता या नहीं दिला सकता, तो उम्मेद्-वार रुष्ट होजाता है। उम्मेद्वार का, अपने पक्ष की बातें कहना,

करते और अपने एजेंट, सब-एजेंट या मित्रादि से अपनी प्रशंसा कराने में संकोच नहीं करते, उनकी गिनती आज-कल चाहे जितने बड़े आदमियों में की जाय, प्राचीन भारतीय आदर्श के अनुसार उनकी सेवा सात्विक और निष्काम नहीं कही जा सकती।

भारतीय आदर्श को ध्यान में रख कर यही व्यवस्था उत्तम है कि कोई व्यक्ति न तो स्वयं किसी संस्था का सदस्य होने के लिए उम्मेदवार बने, और न अपने पक्ष में मत-याचना करने के लिए मतदाताओं के दरवाज़े खटखटाता फिरे। यदि निर्वाचक उससे उम्मेदवार होने की प्रार्थना करें तो वह जनता के सामने इस बात में अपना सहमत होना सूचित करदे कि यदि उसका निर्वाचन हो जायगा तो वह इस कार्य-भार को ग्रहण कर लेगा।

हमारी सम्मति में, यदि इस बात को आवश्यक उप-नियमों सहित क़ानून का स्वरूप मिल जाय, और इसके अनुसार कार्य होने लगे तो निर्वाचन-आन्दोलन बहुत सुधर जाय, और इसकी बहुत सी खराबियाँ हट जायँ।

---

# * सातवाँ अध्याय *

---

## ❋ मत ( 'वोट' ) देना ❋

इस अध्याय में हम यह बतलाएंगे कि निर्वाचन में साधारणतया मत ( 'वोट' ) किस प्रकार दिये जाते हैं। पहिले यह जान लेना आवश्यक है कि मत गुप्त रूप से दिये जाने की क्या आवश्यकता है।

**मतों का गुप्त रहना**—मताधिकार से यथेष्ट लाभ तभी हो सकता है, जब कि मतदाताओं को अपना मत देने में, अर्थात् प्रतिनिधियों के निर्वाचन में पूरी स्वतन्त्रता हो। जिस व्यक्ति को वे प्रतिनिधि बनने के लिए अधिक से अधिक उपयुक्त समझें, उसे ही मत दे सकें, उन पर किसी का अनुचित दबाव न पड़े, और न उन्हें कोई प्रलोभन आदि दिया जाय। इस विचार से निर्वाचन के सम्बन्ध में आवश्यक नियम बनाये जाते हैं।

प्रायः मनुष्यों में एक बड़ी कमजोरी होती है, वे अपना मत खुले-आम स्पष्ट रूप से नहीं दे सकते। यदि किसी व्यवस्थापक सभा का सदस्य बनने के लिए तीन-चार उम्मेदवार हों, तो मतदाता के सामने यह समस्या होती है कि उनमें से किसके लिए वह अपना मत दे। बहुधा जब वह जान लेता है कि अमुक

उम्मेदवार सदस्य बनने के लिए सब से अधिक योग्य है, तो भी यदि कोई दूसरा उम्मेदवार उसका मित्र या रिश्तेदार है, अथवा उसकी जाति या धर्म का है, या विशेष प्रतिष्ठा वाला है तो उसके मन में उसका लिहाज़ हो जाता है। और, अगर सबके सामने मत देना पड़े तो सम्भव है कि मतदाता, अपनी वास्तविक सम्मति के विरुद्ध, इस दूसरे आदमी के लिए मत देदे। इस वास्ते मत गुप्त रूप से देने की प्रथा चलायी गयी है।

**मत देने की विधि**—आजकल निर्वाचन प्रायः इस तरह होता है। पहिले सरकार द्वारा निर्वाचन-स्थान, तिथि और समय निश्चित किया जाता है, और प्रत्येक निर्वाचन-स्थान के लिए एक या अधिक मत लेने वाले अफ़सर की नियुक्ति की जाती है। निर्धारित समय पर, निर्धारित स्थान में मत लेने का कार्य आरम्भ होता है।

जब निर्वाचक मत देने के स्थान पर जाता है, उसका नाम, निर्वाचक नम्बर, और पता पूछा जाता है। आवश्यकता होने पर उम्मेदवार या उसके एजेंट को निर्वाचन–अफ़सर या उसके कर्मचारी के सामने, निर्वाचक की शनाख्त करनी होती है। शिक्षित निर्वाचक को अपने हस्ताक्षर करने, और अशिक्षित को अपने अंगूठे का निशान लगाने पर एक पर्चा दिया जाता है, जिसे निर्वाचन-पत्र या 'बेलट पेपर' कहते हैं। इस पर्चे को देने से पहिले, उम्मेदवार या उसके एजंट के कहने पर, किसी मतदाता

से निर्वाचन-अफ़सर यह प्रश्न कर सकता है, 'क्या आप वही व्यक्ति हैं जिनका नाम निर्वाचक सूची में दर्ज है' या 'क्या आप आज इससे पहिले मत दे गये हैं'। यदि मत दाता इन प्रश्नों का उत्तर न दे, अथवा पहिले प्रश्न का उत्तर 'नहीं' या दूसरे का 'हां' दे, तो उसे निर्वाचन का पर्चा नहीं दिया जायगा। पर्चा देने के बाद निर्वाचन-अफ़सर निर्वाचक को यह बता देता है कि वह अधिक से अधिक कितने मत देसकता है। * पर्चा लेकर शिक्षित निर्वाचक एक नियत एकान्त स्थान में जाकर उस पर्चे पर अपने अभीष्ट उम्मेदवार के नाम के सामने निर्दिष्ट चिह्न ( + या × ) कर देता है और उस पर्चे को मोड़कर एक सन्दूक़ में डाल देता है, जो वहां इस काम के लिए विशेष रूप से तैयार करा के, रक्खा होता है। यदि निर्वाचक अशिक्षित या बीमार हो, अथवा बेकार हाथ वाला हो तो निर्वाचन-अफ़सर उम्मेदवारों तथा उनके एजंटों की उपस्थिति में, उसके बताये हुए नाम के सामने निशान लगाकर पर्चे को उस सन्दूक़ में डलवादेता है। निर्धारित समय के पश्चात् सन्दूक़ पर

* 'एक उम्मेदवार, एक मत'-प्रणाली में, एक निर्वाचक एक सदस्य के लिए एक मत दे सकता है। उदाहरणार्थ यदि किसी निर्वाचक-संघ से तीन प्रतिनिधि चुने जाने हैं, और कल्पना करो कि वहां से पांच उम्मेदवार खड़े होते हैं, तो एक निर्वाचक इन पांचों व्यक्तियों में से किन्हीं तीन सज्जनों के लिए एक-एक मत दे सकता है। वह चाहे तो तीन से भी कम ( दो या एक ) को ही अपना एक-एक मत दे, परन्तु वह उम्मेदवारों में से तीन से अधिक को मत नहीं दे सकता।

मोहर लगाकर उसे बन्द कर दिया जाता है। पीछे यह सन्दूक़ निर्वाचन-अफ़सर, उसके सहायकों, तथा ऐसे उम्मेदवारों या उनके एजेंटों के सामने खोला जाता है, जो वहां उपस्थित हों; और, पर्चों को छांट कर प्रत्येक उम्मेदवार को मिले हुए मत गिने जाते हैं।

**ख़ारिज पर्चे**—जब मतों की गिनती की जाती है, तो निम्न लिखित पर्चे ख़ारिज कर दिये जाते हैं; उनके मत नहीं गिने जाते:—

१—जिन पर सरकारी चिह्न न हो।

२—जिन पर उतने उम्मेदवारों से अधिक के नाम के सामने निशान लगाया गया हो, जितने प्रतिनिधियों की आवश्यकता हो,

३—जिन पर्चों पर कोई निशान न लगाया गया हो,

४—जिन से यह स्पष्ट न हो कि निर्वाचक किस उम्मेदवार को या किन उम्मेदवारों को, मत देना चाहता था, और,

५—जिन पर कोई ऐसा संकेत हो, जिससे मत देने वाले का नाम आदि मालूम हो सके।

निर्वाचकों को चाहिए कि अपना पर्चा ऐसी सावधानी से भरें कि वह ख़ारिज न हो।

**रंगीन सन्दूकों का उपयोग**—पूर्वोक्त पद्धति से पढ़े-लिखे निर्वाचकों का मत तो गुप्त रहता है, परन्तु अशिक्षित निर्वाचक का मत सबको मालूम हो जाता है। इस दोष को दूर करने के लिए कहीं-कहीं रंगीन सन्दूक़ों का भी उपयोग किया जाता है। प्रत्येक उम्मेदवार के लिए एक-एक रंग नियत कर दिया जाता है और उस रंग के सन्दूक़ पर उसका नाम भी लिख दिया जाता है, ( या उसका फ़ोटो चिपका दिया जाता है )। जब निर्वाचन-अफ़सर किसी निर्वाचक को निर्वाचन-पत्र देता है तो वह उसे यह समझा देता है कि किस उम्मेदवार का क्या रंग है, और उसे कह देता है कि जिस उम्मेदवार के लिए उसे मत देना हो, उसके रंग वाले सन्दूक़ में वह अपना निर्वाचन-पत्र डाल दे। निर्वाचक अपनी इच्छानुसार निर्वाचन-पत्र अभीष्ठ सन्दूक़ में डाल देता है। निर्धारित समय के पश्चात् प्रत्येक सन्दूक़ में डाले हुए निर्वाचन-पत्रों की संख्या गिन ली जाती है।

इस प्रणाली से यह लाभ है कि अशिक्षित निर्वाचक अपना मत निस्संकोच, बिना किसी के जाने हुए, दे सकते हैं, उनका भी मत गुप्त रहता है।* यदि किसी निर्वाचक ने अनुचित दबाव

---

* कभी-कभी उम्मेदवारों के एजेन्ट इन सन्दूकों के पास उपस्थित रहते हैं, इससे मत गुप्त नहीं रहता, वह एजेन्टों को विदित हो जाता है। ऐसा होने देना ठीक नहीं, अतः एजेन्टों को वहां न रहने देना चाहिए।

में पड़कर किसी विशेष उम्मेदवार को मत देने की प्रतिज्ञा करली हो तो वह उससे सहज ही में मुक्त हो सकता है।

इस प्रणाली से दूसरा लाभ यह भी है कि इससे 'एकत्रित मत पद्धति' के अनुसार (जिसका वर्णन आगे आठवें अध्याय में किया जायगा), मत आसानी से दिये जा सकते हैं; कारण, निर्वाचक अपने मत-पत्रों में से चाहे जितने मत-पत्र चाहे जिस सन्दूक में डाल सकता है।

आधुनिक निर्वाचन पद्धति में भिन्न भिन्न उम्मेदवारों के पक्ष में दिये हुए मतों के गिनने में बड़ी सुविधा रहती है। जिन उम्मेदवारों के लिए अधिक मत आते हैं, उनके निर्वाचित हो जाने की विज्ञप्ति की जाती है।

**मत देने की दूसरी विधि; 'लिस्ट सिस्टम'**—कुछ देशों में निर्वाचन-कार्य के लिए मत देने की एक दूसरी विधि प्रचलित है; सम्भव है, भारतवर्ष में भी, विशेषतया स्थानीय संस्थाओं अर्थात् म्युनिसिपैलटियों आदि के सदस्यों के चुनाव के लिए इसका उपयोग बढ़ने लगे। अतः इसका उल्लेख करना आवश्यक है। इस विधि के अनुसार, निर्वाचक अपना मत किसी व्यक्ति को नहीं देते, वरन् भिन्न-भिन्न पार्टियों या दलों द्वारा तैयार की हुई सूचियों अर्थात् 'लिस्टों' को ही देते हैं। उदाहरणार्थ कल्पना करो, किसी नगर की म्युनिसिपैलटी का चुनाव होने वाला है, और वहां तीन दल मुख्य हैं, उग्र-दल, कांग्रेस-दल, और

स्वतन्त्र-दल। अब यदि निर्वाचित होने वाले सदस्यों की निर्धारित संख्या बारह है तो प्रत्येक दल अपने बारह-बारह उम्मेदवारों की एक सूची या फहरिस्त ( लिस्ट ) तैयार करता है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक सूची के नाम अन्य सूचियों के नामों से सर्वथा भिन्न हों; कुछ उम्मेदवारों के नाम दो या अधिक सूचियों में होना सर्वथा सम्भव है। अस्तु, मतदाताओं को तीनों सूचियों के नाम बता दिये जाते हैं। प्रत्येक मतदाता को अधिकार है कि वह चाहे जिस सूची के पक्ष में अपना मत दे। जिस दल की तैयार की हुई सूची के पक्ष में सब से अधिक मत आते हैं, उसी दल की विजय होती है। उस दल के सब उम्मेदवारों के निर्वाचित होने की घोषणा की जाती है।

इस प्रणाली की विशेषता यह है कि मतदाता, व्यक्तिगत उम्मेदवारों की अपेक्षा, उनकी पार्टी का अधिक ध्यान रखते हैं; इस प्रकार, विभिन्न दलों के सम्यग् संगठन में सहायता मिलती है।

# * आठवा अध्याय *

## ❋ मत गणना प्रणाली ❋

संसार में आज हमें तरह-तरह की प्रतिनिधि निर्वाचन प्रणालियां दीख रही हैं। फिर भी सर्वोत्तम प्रणाली की खोज जारी है। प्रचलित प्रणालियों में कौनसी सब से अच्छी है, यह कहना सहज नहीं। सुविधा असुविधा देख कर विविध देशों ने भिन्न-भिन्न प्रणालियों को अपना लिया है, पर सदा के लिए नहीं। —प्रो० बलदेव नारायण

**भिन्न-भिन्न प्रणालियां**-भिन्न-भिन्न देशों में प्रायः यह रीति है कि मतदाता अपने में से ही किसी व्यक्ति को मत देकर अपना प्रतिनिधि निर्वाचित करते हैं। मत गणना की दो प्रणालियां हैं:—

(१) एकाकी मत प्रणाली

(२) अनेक मत प्रणाली

दूसरी अर्थात् 'अनेक मत प्रणाली' के अनेक भेद उपभेद हैं; कहा जाता है कि योरप में लगभग तीन सौ निर्वाचन प्रणालियों का अनुभव किया जा चुका है। हम इसके मुख्य मुख्य भेदों का ही विचार करेंगे, जो विशेषतया यहां प्रचलित या उपयोगी हैं। पहले एकाकी मत प्रणाली का विचार करें।

**एकाकी मत प्रणाली**–यह बहुत सरल है। जितने भू-भाग ( प्रान्त, ज़िले या नगर ) के प्रतिनिधि चुनने होते हैं, उसके मत-दाताओं का विचार करके उसे सुविधानुसार कुछ निर्वाचन-क्षेत्रों में विभक्त कर दिया जाता है, जिनमें से प्रत्येक से एक-एक प्रतिनिधि लिया जाय। यदि किसी निर्वाचन–क्षेत्र से एक ही उम्मेदवार हो तो वह प्रतिनिधि चुन लिया जाता है। उसके लिए मतदाताओं को मत देने की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु जब कि एक निर्वाचन-क्षेत्र से कई उम्मेदवार हों—और प्रायः ऐसा ही होता है—तो यह मालूम करने की आवश्यकता होती है कि किस उम्मेदवार के पक्ष में निर्वाचकों का सबसे अधिक मत है। इसके लिए मत लिये जाते हैं। एकाकी मत प्रणाली के अनुसार प्रत्येक मतदाता का एक-एक ही मत होता है। जिस उम्मेदवार के पक्ष में सबसे अधिक मत आते हैं, वह प्रतिनिधि घोषित किया जाता है; शेष सब उम्मेदवार असफल या पराजित माने जाते हैं।

**इस प्रणाली की आलोचना**-- यह प्रणाली जैसी सरल है, वैसी ही सदोष भी है। विचार कीजिए; जब एक ही प्रतिनिधि चुना जाता है, तब जिस–जिस मतदाता ने उसे मत दिया, उस–उस मतदाता का ही प्रतिनिधित्व होता है, शेष मत-दाता अपने प्रतिनिधित्व से वंचित रहते हैं। वे व्यवस्थापक सभा के संगठन और निर्णयों के प्रति उदासीन होते हैं। अनेक

दशाओं में ऐसे मतदाताओं की संख्या काफ़ी बड़ी होती है। यह सर्वथा सम्भव है कि विजयी उम्मेदवार नाम-मात्र के ही बहुमत से जीतजाय। उदाहरणवत, एक निर्वाचन-क्षेत्र से क को ५०० मत मिलें, और ख को ५०२; इस दशा में ख उम्मेदवार प्रतिनिधि घोषित किया जायगा, यद्यपि उसके पक्ष में अपने प्रतिद्वन्दी की अपेक्षा केवल दो ही मत अधिक आए हैं। अस्तु, इस का फल यह होता है कि १००२ मतदाताओं में से ५०० अर्थात् लगभग आधे मतदाताओं का कोई प्रतिनिधित्व नहीं होता। ऐसी दशा में कोई प्रतिनिधि अपने आपको बहुजन समाज का प्रतिनिधि कहने का दावा करे तो उसमें क्या सार है! *

इस प्रणाली को दोष उतना ही अधिक स्पष्ट प्रतीत होता है, जितने अधिक उम्मेदवार निर्वाचन में खड़े होते हैं। कल्पना करो, किसी निर्वाचन-क्षेत्र से चार उम्मेदवार खड़े हैं ( उस क्षेत्र से

---

इस प्रणाली के व्यवहार में, कभी-कभी यह बात भी देखने में आती है कि जब भिन्न-भिन्न उम्मेदवारों के वास्ते मत लिये जाने वाले होते हैं तो जिस उम्मेदवार के वास्ते सबसे प्रथम मत लिये जाते हैं, उसे लाभ रहता है। बहुत से मतदाता उसी के पक्ष में मत दे देते हैं। उन्हें इस बात का विचार नहीं रहता कि उनका एक ही मत हैं, और जब वह खर्च होजायगा तो उनके पास दूसरे उम्मेदवार को देने के वास्ते कुछ न रहेगा। सार्वजनिक संस्थाओं में जब किसी पद के लिए तीन-चार उम्मेदवार होते हैं, तो प्रत्येक उम्मेदवार के समर्थक यही प्रयत्न किया करते हैं कि सबसे प्रथम उनकी पसन्द के उम्मेदवार के वास्ते मत लिये जायँ।

केवल एक ही प्रतिनिधि लिया जाना है ), और इन उम्मेदवारों को मत इस प्रकार प्राप्त होते हैं :—

| | | |
|---|---|---|
| क | को | ५०० |
| ख | ,, | ४५० |
| ग | ,, | ४२५ |
| घ | ,, | ४०० |
| — | | —— |
| योग | | १७७५ |

इस दशा में, क्योंकि क को सबसे अधिक मत प्राप्त हुए हैं, वह विजयी घोषित किया जाता है, और प्रतिनिधि सभा का सदस्य बन जाता है। परन्तु उपर्युक्त हिसाब से स्पष्ट है कि वह १७७५ मतदाताओं में से केवल ५०० का, अर्थात् एक-तिहाई से भी कम मतदाताओं का प्रतिनिधि है। शेष दो-तिहाई से अधिक मतदाताओं का व्यवस्थापक सभा में कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। पाँच सौ का मत प्रगट करने वाला व्यक्ति अन्य १२७५ का भी दृष्टि-कोण सूचित करने वाला मान लिया जाता है। यह कैसा प्रतिनिधित्व है, और कैसा प्रजा-तन्त्र है !

यह ठीक है कि आजकल शासन कार्य में बहुमत से काम होता है, तथा शासन-सूत्र उस दल के हाथ में रहता है, जिसका प्रतिनिधि-सभा में बहुमत हो। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि प्रतिनिधि सभा में केवल किसी दल विशेष के ही प्रतिनिधि रहें,

और अन्य सब दलों का उसका कोई प्रतिनिधित्व न रहे।*
इससे तो जनता को मताधिकार देना बहुत-कुछ व्यर्थ होजाता है।
मताधिकार देकर प्रजा-तन्त्र की दुहाई दी जाती है, परन्तु व्यव-
हार में मताधिकार का लाभ बहुत कम होने देना निरंकुशता
की ओर बढ़ना है।

यह कहा जा सकता है कि देश में कुछ निर्वाचन-क्षेत्र ऐसे
भी होते हैं, जहां उस दल के मतदाता अधिक होते हैं, जिसका
कुल मिला कर देश में अल्प मत होता है। इन निर्वाचन-क्षेत्रों
में इस अल्पमत दल के उम्मेदवार विजयी हो जाते हैं, यही इस
दल को संतोष रहता है। तथापि किसी निर्वाचन-क्षेत्र के संगठित
दल का प्रतिनिधित्व न होने से, आधुनिक परिस्थिति में शासन
उतने अंश में जन-मत के प्रभाव से वंचित रहता है, और फल-
स्वरूप उतना निर्बल होता है।

इस प्रणाली के एक और परिणाम पर विचार करें। सब
निर्वाचन-क्षेत्रों में विभिन्न दलों के मतदाताओं की संख्या समान

---

* जब व्यवस्थापक सभा में एक ही दल के सदस्य होते हैं, तो
वहां उपस्थित होने वाले विषयों पर यथेष्ट तर्क-वितर्क न होने से, उन पर
समुचित प्रकाश नहीं पड़ने पाता। किसी विषय के सब पहलुओं पर
भली भांति विचार होने के लिए यह आवश्यक है कि उस पर वाद-विवाद
हो (हां, यह कार्य शान्ति-पूर्वक होना चाहिए); और, यह तभी हो
सकता है, जब सभा में विविध दलों के भिन्न-भिन्न दृष्टि-कोण वाले
सदस्य हों।

अनुपात से नहीं रहा करती।* इस से अनेक दशाओं में इस प्रणाली के अवलम्बन से, व्यवस्थापक सभा में उस दल का बहुमत हो जाता है, जिसका देश में अल्प-मत होता है और साथ ही उस दल का अल्पमत हो जाता है, जिसका देश मे बहुमत होता है। यह बात एक उदाहरण द्वारा अच्छी तरह समझ में आ सकती है।

कल्पना करो कि एक प्रान्त में चालीस निर्वाचन-क्षेत्र हैं, जिनमें से प्रत्येक से एक-एक प्रतिनिधि, अर्थात् कुल मिलाकर चालीस प्रतिनिधि चुने जाने हैं। यहाँ के कुल मतदाता २,२०,००० है, जिनमें से नरम दल के १,२०,००० और उग्र दल के १,००,००० है। परन्तु ये मतदाता इस प्रकार विभाजित हैं कि उग्र दल के उम्मेदवारों का २५ ज़िलों में बहुमत है, इनके प्रत्येक उम्मेदवार को २८०० मत मिलते हैं, और शेष १५ ज़िलों में अल्प मत है, इन ज़िलों के इस दल के उम्मेदवारों में से प्रत्येक को २००० मत मिलते हैं।

इसे इस प्रकार दिखा सकते हैं:—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| २५ ज़िलों में, | २५×२८०० | = | ७०,००० | मत |
| १५ ज़िलों में, | १५×२००० | = | ३०,००० | मत |
| ४० ज़िलों में, | योग | = | १,००,००० | मत |

* अधिकारियों द्वारा निर्वाचन-क्षेत्रों का सीमा-निर्धारण भी ऐसा हो सकता है, जिससे एक दल के मत संगठित हो जायँ, और दूसरे के बिखरे रहें।

अब नरम दल का हिसाब लें, वह इस प्रकार है:—

२५ ज़िलों में से प्रत्येक में २७००; और १५ ज़िलों में से प्रत्येक में ३५०० । अर्थात्

| | | | |
|---|---|---|---|
| २५ ज़िलों में, | २५×२७०० | = | ६७,५०० मत |
| १५ ज़िलों में, | १५×३५०० | = | ५२,५०० मत |
| ४० ज़िलों में, | योग | = | १,२०,००० मत |

इस प्रकार उग्र दल के केवल १,००,००० मतदाता होकर ही उसके २५ उम्मेदवार जीत जाते हैं; जब कि नरम दल के १,२०,००० मतदाता होने पर भी उसके केवल १५ उम्मेदवार ही जीतते हैं । निदान, उग्र दल का प्रान्त में अल्प मत होकर भी व्यवस्थापक सभा में उसका बहुमत हो जाता है । इसके विपरीत, नरम दल का प्रान्त् में बहुमत होकर भी व्यवस्थापक सभा में उसका अल्प मत रह जाता है ।

इस प्रकार एक-मत प्रणाली की सदोषता स्पष्ट है । परन्तु जिन निर्वाचक संघों से एक-एक ही प्रतिनिधि लिया जाना वाला हो, उनमें इस प्रणाली के उपयोग के सिवाय और कुछ चारा नहीं है । अस्तु, इस प्रणाली के दोष निवारण करने के प्रयत्नों में यथेष्ट सफलता न मिलने से इस प्रणाली की जगह दूसरी प्रणाली काम में लाने का विचार किया गया है ।

**अनेक-मत-प्रणाली**—इस प्रणाली का व्यवहार वहाँ

किया जाता है, जहाँ प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र से एक-एक ही नहीं, कई-कई प्रतिनिधि निर्वाचित करने होते हैं। इसमें प्रत्येक मत-दाता को केवल एक-एक ही मत देने का अधिकार नहीं होता, वरन् वह इतने मत दे सकता है, जितने प्रतिनिधि उस निर्वाचन-क्षेत्र से चुने जाने वाले हों। इस प्रणाली के अनुसार मत सैकड़ों प्रकार से दिये जा सकते हैं, उनमें से मुख्य निम्न लिखित हैं:—

( क ) 'एक उम्मेदवार, एक मत'—पद्धति।

( ख ) 'एकत्रित मत' ( 'क्यम्यूलेटिव वोटिंग' ) पद्धति।

( ग ) 'एकाकी हस्तान्तरित मत' ( 'सिंगल ट्रांसफरेबल वोट' ) पद्धति।

अब इनके सम्बन्ध में क्रमशः विचार करेंगे।

**'एक उम्मेदवार, एक मत' पद्धति**—जहां अनेक मत प्रणाली के इस भेद का उपयोग होता है, वहां बहुमत का ही बोल-बाला रहता है; अल्प मत का प्रतिनिधित्व नहीं होता।

उदाहरणवत्, कल्पना करो कि एक निर्वाचन-क्षेत्र से चार प्रतिनिधि लिये जाने वाले हैं, अतः यहां प्रत्येक निर्वाचक को चार मत देने का अधिकार है। अब कल्पना करो कि यहां तीन दल हैं, उग्र, नरम और स्वतंत्र। उग्र दल के ४००, नरम दल के ८००, और स्वतंत्र दल के ६०० मतदाता हैं। प्रत्येक दल अपने चार-चार उम्मेदवार खड़े करता है, और चाहता है कि उसके

ही सब उम्मेदवार प्रतिनिधि चुने जायँ। अब होता क्या है ? उग्र दल के प्रत्येक उम्मेदवार को चार-चार सौ, मत मिलते हैं, नरम दल के उम्मेदवार को आठ-आठ सौ, और स्वतंत्र दल के उम्मेदवार को नौ-नौ सौ। * इस प्रकार स्वतंत्र दल के चारों उम्मेदवार विजयी होकर प्रतिनिधि घोषित किये जाते हैं; और उग्र दल के चारों, तथा नरम दल के चारों, कुल मिलाकर शेष आठों उम्मेदवार हार जाते हैं; उनमें से कोई भी प्रतिनिधि नहीं चुना जाता। इस दशा में यह प्रणाली एकाकी मत प्रणाली की भांति दूषित प्रमाणित होती है।

**'एकत्रित मत' पद्धति**—अब अनेक-मत प्रणाली के उपयोग की दूसरी विधि अर्थात् एकत्रित मत ( 'क्यूम्यूलेटिव वोटिंग' ) पद्धति पर विचार करें। इसके अनुसार मतदाताओं को अधिकार होता है कि वे अपने मत अपनी इच्छानुसार वितरण करें; यहां तक कि जो मतदाता चाहे, वह अपने समस्त मत एक ही उम्मेदवार को भी दे सकता है। इस दशा में निर्वाचन-क्षेत्र का जो दल अपने आपको कमज़ोर अर्थात् अल्पसंख्यक समझता है, वह अपने एक ही उम्मेदवार को अपने समस्त मत दे देता है, इस प्रकार उसका कम-से-कम एक प्रतिनिधि व्यवस्थापक सभा में अवश्य पहुंच जाता है। दृष्टान्तवत्,

* उदाहरण को सरल रखने के लिए यह मान लिया गया है कि प्रत्येक मतदाता अपना मत देता है, कोई अनुपस्थित नहीं है।

पूर्वोक्त उदाहरण में, कल्पना करो कि स्वतंत्र दल व्यवस्थापक सभा में अपने चारों प्रतिनिधि भेजने के लिए अपने उम्मेदवारों को अपने समस्त मतदाताओं का एक-एक मत दिलाता है, उसके प्रत्येक उम्मेदवार को नौ-नौ सौ मत मिलते हैं। अब यदि उग्र दल के मतदाताओं के समस्त मत उस दल के एक ही उम्मेद-वार को मिल जाते हैं, तो उसके पक्ष में ४००×४=१६०० मत हो जाते हैं; इसी प्रकार नरम दल के समस्त मत उस दल के एक ही उम्मेदवार को मिलने से उसके पक्ष में ८००×४=३२०० मत हो जाते हैं।

अब मताधिक्य के विचार से विजयी उम्मेदवारों का क्रम इस प्रकार रहता है:—

| | |
|---|---|
| ( १ ) नरम दल का उम्मेदवार | ३२०० |
| ( २ ) उग्र दल का ,, | १६०० |
| ( ३ ) स्वतन्त्र दल का ,, | ६०० |
| ( ४ ) ,, ,, दूसरा उम्मेदवार | ६०० |

इस प्रकार, इस प्रणाली से व्यवस्थापक सभा में किसी एक दल विशेष के ही प्रतिनिधि नहीं जाते, वरन् उग्र दल जैसे अल्प-संख्यक दल को भी अपना प्रतिनिधि भेजने का अवसर मिलता है। यही इसकी विशेषता है।

यह तो पहिले ही कहा जाचुका है कि अनेक-मत पद्धति का, जिसका एक स्वरूप एकत्रित मत पद्धति है, व्यवहार वहां किया

जाता है जहां प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र से एक--एक ही नहीं, कई-कई प्रतिनिधि निर्वाचित करने होते हैं। किसी निर्वाचक संघ से जितने प्रतिनिधि अधिक निर्वाचित करने होंगे, उतना ही इस पद्धति का प्रभाव विशेष मालूम होगा। जब निर्वाचन-क्षेत्र बड़े होते हैं, और एक-एक निर्वाचन-क्षेत्र से, पांच से लेकर चौदह-पन्द्रह तक प्रतिनिधि चुनने होते हैं, तो इस पद्धति से अल्प-संख्यक दलों को बहुत लाभ पहुंचता है।

परन्तु यह प्रणाली भी दोष-मुक्त नहीं। कुछ खास सुप्रसिद्ध उम्मेदवारों को इतने अधिक मत मिल जाते हैं, जितने की उन्हें आवश्यकता नहीं होती; इसके विपरीत, दूसरे उम्मेदवारों को मतों की न्यूनता रहती है, और इसलिए वे असफल रह जाते हैं। पूर्वोक्त दृष्टान्त में नर्मदल को अपना एक प्रतिनिधि व्यवस्थापक सभा में भेजने के लिए उसे अपने मतदाताओं के ३२०० मत दिलाने पड़े हैं, जब कि वह ६०० से एक-दो ही अधिक मत मिलने पर भी प्रतिनिधि चुना जासकता था। मतदाताओं के इतने अधिक मतों का व्यर्थ जाना स्पष्टतः इस प्रणाली का दोष है। पुनः इस प्रणाली के अनुसार कार्य करने में भिन्न-भिन्न दलों के नेताओं को मतदाताओं का संगठन करने में जी-तोड़ परिश्रम करना पड़ता है, फिर भी अनेक दशाओं में उन्हें व्यवस्थापक सभाओं में अपनी संख्या के अनुकूल प्रतिनिधि भेजने में सफलता नहीं मिलती।

**एकाकी हस्तान्तरित मत प्रणाली**—इस प्रणाली का

उपयोग ऐसे निर्वाचन-क्षेत्रों में ही किया जाता है जहां से कई-कई (प्रायः तीन से सात तक) प्रतिनिधियों का निर्वाचन होने वाला हो। भिन्न-भिन्न दलों के उम्मेदवार खड़े होते हैं। इस प्रणाली के अनुसार प्रत्येक मतदाता को यह सूचित करने का अवसर दिया जाता है कि वह सब उम्मेदवारों में, सबसे अधिक किसे पसन्द करता है, और उस से कम किसे, और इसी प्रकार तीसरे और चौथे आदि नम्बर पर किसे पसन्द करता है। जिस उम्मेदवार को वह सबसे अधिक पसन्द करता है उसके नाम के आगे वह '१' लिख देता है; उससे दूसरे नम्बर पर वह जिस उम्मेदवार को पसन्द करता है, अर्थात् शेष उम्मेदवारों में से जिसे वह सब से अधिक पसन्द करता है, उसके नाम के आगे '२' लिख देता है। इसी प्रकार वह '३', '४', '५', संख्या उन उम्मेदवारों के नाम के सामने लिख देता है, जिन्हें वह इस क्रम से पसन्द करता है। इस प्रकार मतदाता यह सूचित कर सकता है कि सर्व प्रथम उसके मत का उपयोग किस उम्मेदवार के लिए हो, और यदि उस उम्मेदवार को उसके मत की आवश्यकता न हो (वह उम्मेदवार अन्य मतदाताओं के मतों से ही चुना जाय) तो उस मत का उपयोग किस दूसरे उम्मेदवार के लिए हो, और यदि दूसरे उम्मेदवार को भी उस मत की आवश्यकता न हो तो किस तीसरे या चौथे उम्मेदवार के लिए उसका उपयोग किया जाय।

उम्मेदवारों की सफलता का हिसाब लगाने के लिए पहले यह देखा जाता है कि किसी उम्मेदवार को कम से कम कितने मत

की आवश्यकता है। मतों की इस संख्या को 'कोटा', 'पर्याप्त संख्या' या 'आनुपातिक भाग' कहते हैं। इसे समझने के लिए कल्पना करो, किसी निर्वाचन-क्षेत्र से एक उम्मेदवार चुनना है* और वहां सौ मतदाता हैं तो जिस उम्मेदवार का कम से कम ५१ मत मिल जायँगे; वह अवश्य चुनलिया जायगा, क्योंकि दूसरे उम्मेदवार को अधिक से अधिक ४९ ही तो मत मिल सकते हैं। इस प्रकार, इस दशा में पर्याप्त संख्या ५१ है, जो कुल मतों के आधे अर्थात् ५० से एक अधिक है। अब, यदि दो उम्मेदवारों को चुना जाना है तो जिन उम्मेदवारों को ३४, ३४ मत मिल जायँगे तो वे सफल होजायँगे; क्योंकि तीसरे को यदि शेष सब मत भी मिलजायँ तो उसके प्राप्त मतों की संख्या अधिक से अधिक ३२ होगी। इस प्रकार इस दशा में पर्याप्त संख्या कुल मतों की तिहाई अर्थात् ३३ से एक अधिक है। निदान, कुल मतों को निर्वाचित होने वाले प्रतिनिधियों की संख्या में एक जोड़ कर, उस से भाग देने से, तथा भजन-फल में एक जोड़ देने से पर्याप्त संख्या मालूम होजाती है। इस बात को सूत्र रूप में इस प्रकार कह सकते हैं :—

$$\text{पर्याप्त संख्या} = \frac{\text{मत संख्या}}{\text{प्रतिनिधि संख्या} + १} + १$$

* पहले कहा जा चुका है कि इस प्रणाली का उपयोग ऐसे निर्वाचन-क्षेत्रों में ही किया जाता है, जहां से प्रायः तीन से सात प्रतिनिधियों तक का चुनाव होने वाला होता है। यहां 'पर्याप्त संख्या' को समझाने के लिए, एक तथा दो उम्मेदवारों का उदाहरण लिया गया है।

जो उम्मेदवार प्रथम पसन्द के इतने मत प्राप्त कर लेते हैं, जो पर्याप्त संख्या के समान या उससे अधिक हों, वह निर्वाचित घोषित कर दिये जाते हैं। इन चुने हुए व्यक्तियों के मत प्रर्याप्त संख्या से जितने अधिक होते हैं, उन्हें 'सरप्लस' अथवा फ़ाज़िल या अतिरिक्त मत कहा जाता है। यह मत अपर्याप्त संख्या के मत वाले उम्मेदवारों में, (एक निर्धारित हिसाब से) बांटे जाते हैं। यदि ऐसा करने पर आवश्यकतानुसार उम्मेदवार निर्वाचित नहीं होते तो पर्याप्त संख्या से कम मत वाले उम्मेदवारों में से जिसके मत सब से कम होते हैं, उसे असफल घोषित करके, उसके प्राप्त मतों का उपयोग उन उम्मेदवारों के लिए किया जाता है, जिनके लिए वे मत दूसरों के पसन्द में रक्खे गये हों। यह क्रिया उस समय तक होती रहेगी, जब तक कि जितने प्रतिनिधियों को निर्वाचित करना है, उतने निर्वाचित न होजायँ।

इस प्रणाली में मतदाता को यह लाभ रहता है कि उसका कोई मत व्यर्थ नहीं जाता, अर्थात् ऐसा नहीं होता कि उसका उपयोग न हो; और वह मत किसी ऐसे व्यक्ति को भी नहीं मिलता, जिसे उसकी आवश्यकता न हो।

भारतवर्ष में प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों तथा (प्रस्तावित) संघीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों के चुनाव के लिए यही प्रणाली निर्धारित की गई है। कांग्रेस ने भी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों तथा अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के निर्वाचन के लिए इसी प्रणाली को अपनाया है। इसे अच्छी तरह

समझाने के लिये एक उदाहरण आगे दिया जाता है । *

मान लीजिए, पटना ज़िला कांग्रेस कमेटी के ६५ सदस्य हैं, और उन्हें प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के लिए चार प्रतिनिधि चुन कर भेजने हैं। मान लीजिए इस चुनाव में तीन दलों ने अपने-अपने उम्मेद्वार खड़े किये हैं। कांग्रेस दल के उम्मेद्वार हैं सर्वश्री शारँगधर सिंह, गंगाशरण, अम्बिकाकान्त सिंह और मुकुटधारी सिंह। कांग्रेस समाजवादी (साम्यवादी) दल के हैं, श्री श्यामनन्दन और श्री चन्द्रिकासिंह। हिन्दू-दल ने एक ही उम्मेद्वार खड़ा किया है, और यह हैं श्री जगतनारायण लाल।

एक-एक करके ६५ मतदाता मत देने जाते हैं और चुनाव-निरीक्षक से मत-पत्र प्राप्त करते हैं, जो नीचे जैसा होता है :—

| चुनाव का क्रम | उम्मेदवारों के नाम |
|---|---|
| ... | श्री शारंगधर सिंह |
| ... | ,, गंगाशरण सिंह |
| ... | ,, अम्बिकाकान्त सिंह |
| ... | ,, मुकुटधारी सिंह |
| ... | ,, जगतनारायण लाल |
| ... | ,, श्यामनन्दन सिंह |
| ... | ,, चन्द्रिका सिंह |

* 'नवशक्ति' में प्रकाशित प्रो० बल्देवनारायण जी के एक लेख के आधार पर।

## सूचनाएँ

(क) जिस उम्मेदवार को आप चुनते हैं उसके नाम के पहिले, चुनाव के क्रम का जो खाना है, उसमें १ का चिन्ह बना दीजिए।

(ख) आपको अधिकार है कि उस उम्मेदवार के बाद आप जिसका चुना जाना पसन्द करते हों, उसके नाम के पहिले के खाने में २ का चिन्ह बना दीजिए। आप जितने चाहें उतने उम्मेदवारों को पसन्द कर सकते हैं, पर किस के बाद किसको पसन्द करते हैं यह साफ़ कर देने के लिए सब को ३, ४, ५......के चिन्ह ख़ाने में अंकित करके नम्बरिया दीजिए।

सावधान ! दो उम्मेदवारों के नाम के पहले एक ही चिन्ह न बनाइये; यदि बनाइयेगा तो मत-पत्र रद्द हो जायगा।

मत-पत्र लेकर मतदाता निर्जन कमरे में जाते हैं और उस पर आदेशानुसार चिह्न बनाकर मत-पत्रों के सन्दूक़ में उसे डाल देते हैं। बस, उनका काम ख़त्म हो जाता है।

अब निर्वाचन-अध्यक्ष की बारी आती है। वह जिस उम्मेद-वार के नाम के पहिले जितने मतदाताओं ने नं० १ का चिह्न बनाया है, उतने मत उस उम्मेदवार को, देता है।

मान लीजिए उम्मेदवारों को इस तरह मत मिले—

श्री शारङ्गधर सिंह..............२५
,, जगत नारायण लाल.........१८
,, श्यामनन्दन सिंह.............१४

श्री गंगा शरण सिंह............१३
,, अम्बिका कान्त सिंह.........१०
,, मुकुटधारी सिंह............... ६
,, चन्द्रिका सिंह............... ६

अर्थात्, बाबू शारङ्गधरसिंह को २५ मतदाताओं ने अव्वल दर्जा दिया, और श्री जगत नारायण लाल को १८ ने। इसी तरह औरों के मत का मतलब समझ लीजिए। अब मतदाता हैं ६५, और प्रतिनिधि चुनने हैं चार; इस लिए पर्याप्त संख्या हुई ६५÷(४+१)+१=२०, यानी जिसे २० मत मिले वह प्रतिनिधि चुन लिया गया। ऊपर देखिए, शारङ्गधर बाबू को २५ मत मिले हैं। बीस मत तो पर्याप्त संख्या ही है। इस लिए उन्हें ५ मत फाज़िल मिले। ये ही पांच मत, मतदाताओं के आदेशानुसार, अन्य उम्मेदवारों के लिए प्राप्त होंगे। वे अन्य उम्मेदवार कौन हैं, इसे जानने के लिए हमें देखना पड़ेगा कि उपर्युक्त २५ मत-पत्रों में उम्मेदवार नं० २ कौन-कौन हैं। मान लीजिए कि १५ मत-पत्रों में उम्मेदवार नं० २ गंगा बाबू हैं, और १० मत-पत्रों में मुकट बाबू हैं। अब १५ मत का पंचमांश गंगा बाबू को मिलेगा, और १० मत का पंचमांश मुकट बाबू को; पंचमांश इस लिए कि शारङ्गधर बाबू को पांच मत ही फाज़िल मिले हैं, जो क्रम से प्राप्य हैं; और ये २५ के, जो कि शारङ्गधर बाबू के कुल मत हैं, पंचमांश हैं। इस हिसाब से गंगा बाबू को शारङ्गधर

बाबू के फाजिल ५ मतों में से तीन मत मिले, और मुकट बाबू को दो मत। * परिणाम-स्वरूप मत-पत्र सार का परिवर्तित रूप इस प्रकार होगा:—

श्री शारङ्गधर सिंह (२५-५) २० मत (प्रतिनिधि चुने गये)
„ जगत नारायण लाल १८ „
„ गंगा शरण सिंह (१३+३) १६ „
„ श्यामनन्दन सिंह १४ „
„ मुकटधारी सिंह (९+२) ११ „
„ अम्बिका कान्त सिंह १० „
„ चन्द्रिका सिंह ६ „

हम साफ देख रहे हैं कि शारङ्गधर बाबू को छोड़कर और किसी को पर्याप्त मत भी नहीं मिले। इस लिए उनके अतिरिक्त और किसी के पास फाजिल मत हो ही नहीं सकते, जो क्रम से प्राप्य हों। इस लिए हमें उस उम्मेदवार को ताकना चाहिए,

* कभी-कभी ऐसा भी किया जाता है कि अतिरिक्त या फाज़िल मत का बटवारा करने के लिए इस प्रकार का हिसाब नहीं लगाया जाता। उस दशा में, उपर्युक्त उदाहरण में बाबू शारङ्गधर सिंह के ५ फाज़िल मतों को बांटने के लिए २५ मत-पत्रों में दिये हुए दूसरी पसन्द के मतों का विचार नहीं किया जाता। पहिले २० मत-पत्र पृथक् कर दिये जाते हैं, फिर जो भी ५ शेष बचते हैं, केवल उनमें ही सूचित की हुई दूसरी पसन्द देखी जाती है, कि वह किस-किस उम्मेदवार के लिए कितनी-कितनी संख्या में है।

जिसे मत फ़िज़ूल ही मिले। ऐसे उम्मेद्वार श्री चन्द्रिका सिंह हैं। पर जिन छः मतदाताओं ने इन्हें मत दिये, उन्होंने अपने मत की दूसरी पसन्द का चिन्ह नहीं लगाया। इस लिए हम चन्द्रिका-सिंह के छः मतों में से एक भी लेकर किसी दूसरे उम्मेद्वार को नहीं दे सकते। चन्द्रिकासिंह जी के ठीक ऊपर अम्बिका बाबू का नाम है, जिन्हें दस मत मिले हैं। मत-पत्र सार में इनका स्थान छठा है, जब कि ज़िले को चार ही प्रतिनिधि चुनने हैं। इस लिए इनके मत भी फ़िज़ूल ही जायँगे, यदि ये मत किसी अन्य उम्मेद्वार के लिए क्रम से प्राप्त न हुए। अच्छा, इनके ( चन्द्रिकासिंह जी के ) मत-पत्र देखिए। छः मत-पत्रों में नं० २ हैं श्री शारङ्गधर जी, और चार में हैं गंगा बाबू। अम्बिका बाबू अपना फ़ाज़िल ( 'सरप्लस' ) मत नहीं दे रहे हैं, वे तो उन मतों को दे रहे हैं जो उन्हें फ़िज़ूल ही मिले हैं। इस लिए इनका हर एक मत शारङ्गधर बाबू और गंगा बाबू को मिलेगा। पर शारङ्गधर बाबू को पर्य्याप्त मत प्राप्त हैं। इसलिए अम्बिका बाबू के ६ मत शारङ्गधर बाबू को न प्राप्त होकर उम्मेद्वार नं० ३ को प्राप्त होंगे, जो श्री श्यामनन्दन सिंह हैं। गंगा बाबू को तो चार मत मिलेंगे ही। अब मत-पत्र सार का रूप ऐसा होगा:—

| | | |
|---|---|---|
| श्री शारङ्गधर सिंह | ( २५-५ ) | २० ( चुने गए ) |
| „ श्यामनन्दन सिंह | ( १४+६ ) | २० ( „ „ ) |
| „ गंगा शरण सिंह | (१३+३+४) | २० ( „ „ ) |
| „ जगत नारायण लाल | | १८ |

श्री मुकटधारी सिंह (६+२) ११
,, चन्द्रिका सिंह ६
,, अम्बिका कान्त सिंह (१०–१०) (हट गए)

अब प्रतिनिधि चुनने हैं चार, और पर्याप्त मत मिले तीन ही को। इसलिए अपर्य्याप्त मत प्राप्त उम्मेदवारों में जो चोटी पर होगा, वह भी प्रतिनिधि चुन लिया जायगा। बस, अब जिले को जगतनारायण बाबू सहित चार प्रतिनिधि मिल गये और चुनाव-अध्यक्ष का काम समाप्त हुआ।

ऊपर के उदाहरण में एक विशेषता है, जिस पर हमारा ध्यान जाना चाहिए। कांग्रेस दल के दो ही सदस्य चुने गए हैं यद्यपि कांग्रेस दल को ५० मत मिले। कांग्रेस समाजवादी दल को २० मत मिले और उनका एक सदस्य प्रतिनिधि बन गया। पर हिन्दू दल ने तो १८ ही मतदाताओं के बल से अपने एक उम्मेदवार को जिता दिया। इसका अर्थ यह है कि कांग्रेस दल की अपेक्षा शेष दोनों दल अधिक संगठित हैं। कांग्रेस दल संगठित होता तो चार की जगह तीन ही उम्मेदवार खड़ा करता और ऐसी हालत में इसकी दशा अपेक्षाकृत अच्छी होती। इसके एक उम्मेदवार अम्बिका बाबू के ६ मतदाताओं ने उम्मेदवार नं० २ कांग्रेस दल से न चुन कर साम्यवादी दल से चुन लिया है। यदि उम्मेदवार नंबर २ श्यामनन्दन बाबू की जगह मुकुट बाबू होते तो कांग्रेस दल के तीन उम्मेदवार चुन लिये जाते। एक

बात और है। चन्द्रिका बाबू के मतदाताओं ने उम्मेदवार नं० २ को चिन्हित ही नहीं किया। यदि उनके समाजवादी मतदाता श्यामनन्दन बाबू को उम्मेदवार नंबर २ बनाते तो श्यामनन्दन बाबू को पर्याप्त मत मिलते ही, इसलिए वे तब भी चुन लिये जाते। मतलब यह कि इस प्रणाली का परिणाम उतना ही युक्ति, संगत होगा जितने संगठित दल होंगे। संगठित दल के लिए यह अनुमान कर लेना कि उसे कितने मत मिलेंगे, ज्यादा कठिन नहीं है। फिर पर्य्याप्त संख्या को दृष्टि में रखकर, दल निर्णय कर सकता है कि उसे कितने उम्मेदवार खड़े करने चाहिएं। अल्प से अल्प मत का दल भी निश्चय कर सकता है कि उसे चुनाव में शामिल होना चाहिए या नहीं; यदि होना चाहिए तो कितने उम्मेद-वारों को ले कर।

यह प्रणाली अन्य प्रणालियों की अपेक्षा नवीन है और इसके अनुसार मत-गणना के कार्य में परिश्रम भी अधिक करना पड़ता है। परन्तु यह सब से अधिक उपयोगी और न्यायोचित होने के कारण इसी का अधिक प्रचार होता जाता है। तथापि हमें इसके उपयोग की सीमाओं को नहीं भूलना चाहिए। इसका उपयोग प्रायः उन्हीं निर्वाचनों में किया जाता है जहाँ निर्वाचन अप्रत्यक्ष होता है, अथवा जहाँ उम्मेदवारों की संख्या बहुत परिमित होती है। प्रत्यक्ष और बड़े निर्वाचक संघों में इसका उपयोग बहुत जटिल हो जाता है।

उदाहरणवत, संघीय व्यवस्थापक सभा में मदरास प्रान्त के

साधारण प्रतिनिधियों की संख्या १६ निर्धारित की गयी है। कल्पना करो इन स्थानों के लिए पचास उम्मेदवार हैं, और इन का निर्वाचन अप्रत्यक्ष नहीं है (जैसा कि इस समय निश्चय किया हुआ है) वरन् प्रत्यक्ष है। इस दशा में यदि बालिग़ मताधिकार भी हो तो मदरास की साढ़े चार करोड़ जनता में से लगभग सवा दो करोड़ आदमी निर्वाचक होंगे। विशेषतया जब कि सर्व साधारण में शिक्षा का प्रचार नहीं है, उक्त निर्वाचकों में बहुत कम ऐसे निकलेंगे, जो गंभीरता-पूर्वक इस बात का विचार कर सकें कि पचास उम्मेदवारों में से किसे सब से अधिक पसन्द किया जाय, और किसे दूसरे नंबर पर, और किसे तीसरे चौथे, या पांचवे नंबर पर। साधारणतया यही होगा कि निर्वाचक प्रथम पसन्द के उम्मेदवार के नाम के सामने तो कुछ सोच-विचार कर निशान लगाएँगे, और शेष के नामों के सामने योंही निशान लगादेंगे, अथवा कुछ दशाओं में न भी लगाएँगे। ऐसा होने पर इस प्रणाली की विशेषता ही जाती रहती है और इस का मुख्य उद्देश्य सफल नहीं होता। अस्तु यह प्रणाली अन्य प्रणालियों की अपेक्षा अधिक न्याययुक्त होने पर भी इस का बड़े और प्रत्यक्ष निर्वाचन में यथेष्ठ उपयोग नहीं हो सकता।

———

# * नवाँ अध्याय *

## ❋ निर्वाचन अपराध ❋

यह स्पष्ट है कि निर्वाचन कार्य एक प्रकार का युद्ध है। प्रत्येक उम्मेदवार अपने प्रतियोगी उम्मेदवार की अपेक्षा अधिक मत संग्रह करने का प्रयत्न करता है। अनेक बार ऐसा भी देखा गया है कि जो व्यक्ति उम्मेदवार होने के लिए पहिले विशेष इच्छुक न थे, और जिन्होंने दूसरों के बहुत समझाने-बुझाने पर ही उम्मेदवारी का पर्चा दाख़िल किया था, वे निर्वाचन में विजयी होने के लिए, पीछे बड़े जोश से काम करने लगे।

अस्तु, बहुधा यह आशंका रहती है कि उम्मेदवार कोई ऐसी अनियमित कारवाई न कर गुज़रें, जिससे निर्वाचन कार्य बहुत दूषित होजाय। इसे रोकने के लिए प्रत्येक देश में जहां-जहां निर्वाचन होता है, कुछ ऐसे नियम बनाये जाते हैं जिनके अनुसार निर्वाचन सम्बन्धी अनियमित कार्य दंडनीय अपराध माने जाते हैं। यद्यपि उक्त नियमों के बनजाने से अपराधों का सर्वथा अभाव नहीं होजाता और कुछ आदमी अपराध करते हुए भी क़ानून से साफ़ बचे रहते हैं, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि आवश्यक नियम बन जाने से, तथा उनमें समय-समय पर देश-

काल की परिस्थिति के अनुसार, परिवर्तन होते रहने से, परि-स्थिति बहुत बिगड़ने नहीं पाती।

**अपराध माने जाने वाले कार्य**—भारतवर्ष में व्यवस्थापक सभाओं के निर्वाचन के लिए निम्न-लिखित कार्य अपराध माने जाते हैं। *

१—रिशवत,

२—अनुचित प्रभाव,

३—झूठे नाम से कार्य करना,

४—झूठा बयान प्रकाशित करना,

५—निर्वाचन-व्यय का हिसाब न देना, या झूठा हिसाब देना।

६—निर्वाचक को सवारी खर्च देना,

७—किराये की सवारियों को भाड़े पर लेना,

८—शराब की दुकानों को किराये पर लेना,

९—मुद्रक या प्रकाशक के नाम के बिना, कोई सूचना आदि प्रकाशित करना,

* म्युनिसिपैलटियों और ज़िला-बोर्डों के निर्वाचन के लिए इन में से प्रायः पहिला, दूसरा, तीसरा, चौथा और नवां कार्य अपराध माना जाता है।

इन में से पहिले पांच अपराध बड़े, और शेष चार छोटे माने जाते हैं। * अब हम इन अपराधों के सम्बन्ध में पृथक् पृथक् कुछ विशेष विचार करते हैं।

**रिशवत**—उम्मेदवार या, उसके एजंट स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, किसी व्यक्ति को कोई वस्तु या रुपया इस उद्देश्य से दें, या देने का वचन दें कि वह व्यक्ति निर्वाचन के लिए उम्मेदवार होजाय, या उम्मेदवार न हो, या उम्मेदवारी से बैठ जाय, अथवा वह व्यक्ति उसके पक्ष में मत दे या मत बिलकुल ही न दे तो वह उम्मेदवार या एजंट रिशवत देने का अपराधी माना जाता है। यदि वस्तु या रुपया उपर्युक्त कार्य किये जाने के लिए इनाम के तौर पर दिया जाय तो भी वह रिशवत समझी जाती है।

[ निर्वाचन के समय निर्वाचकों को भोजन कराना, शरबत या शराब आदि पिलाना, दावत इत्यादि देना भी रिशवत समझी जाती है। इस सम्बन्ध में, भविष्य में दावत देने का वायदा करना भी रिशवत मानी जाती है। परन्तु यदि दावत बिना वायदा किये दी जाय तो रिशवत नहीं मानी जाती। यदि ज़मींदार अपने काश्तकारों को विशेष अधिकार, उनका मत प्राप्त करने के लिए देदे, तो वह भी रिशवत मानी जाती।]

---

* इन अपराधों के अपराधियों को जेल या जुर्माने का भिन्न-भिन्न दण्ड दिया जाता है, अथवा निर्धारित समय के लिए निर्वाचन-अधिकार से वंचित किया जाता है।

**अनुचित प्रभाव**—जो व्यक्ति किसी उम्मेदवार या निर्वाचक या किसी अन्य ऐसे मनुष्य को, जिसका उम्मेदवार या निर्वाचक से घनिष्ट सम्बन्ध हो, किसी तरह का नुक़सान पहुंचाने की धमकी दे, या इस प्रकार की धमकी दे कि यदि वह उसके कथनानुसार कार्य न करेगा तो वह दैवी कोप या पाप का भागी होगा, तो वह व्यक्ति अनुचित प्रभाव डालने का अपराधी माना जाता है।

**झूठे नाम से कार्य कराना**—यदि कोई उम्मेदवार या उसका एजंट स्वयं, या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, निर्वाचन-पत्र के लिए, किसी व्यक्ति से अन्य (जीवित या मृत) व्यक्ति के नाम से दर्ख़ास्त दिलाये, या एक व्यक्ति से दो भिन्न भिन्न नामों से दर्ख़ास्त दिलाये तो वह उम्मेदवार या उसका एजंट झूठे नाम से कार्य कराने का अपराधी माना जाता है।

**झूठा बयान प्रकाशित करना**—यदि काई उम्मेदवार या उसका एजंट स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, किसी अन्य उम्मेदवार के आचरण या व्यवहार के विरुद्ध ऐसा बयान प्रकाशित कराये, जिसे वह जानता हो कि सच नहीं है, और जिससे उसके प्रतियोगी उम्मेदवार के निर्वाचन में हानि पहुंचने की संभावना हो, तो वह उम्मेदवार या उसका एजंट झूठा बयान प्रकाशित करने का अपराधी माना जाता है।

**निर्वाचन व्यय का हिसाब न देना, या झूठा हिसाब देना**--निर्वाचन का परिणाम प्रकाशित होने से एक निर्धारित अवधि के भीतर, उम्मेदवार और उसके एजंट को निर्वाचन सम्बन्धी अपने व्यय का पूरा हिसाब निर्वाचन-अफ़सर के पास भेज देना चाहिए। इस हिसाब में निम्नलिखित व्यय बतलाया जाना आवश्यक है।

(अ) उम्मेदवार का निर्वाचन में सफर सम्बन्धी तथा अन्य निजी व्यक्तिगत व्यय। (आ) एजंट, सब-एजंट, क्लर्क तथा अन्य कर्मचारियों का वेतन ( प्रत्येक के नाम सहित )। (इ) इन सब कर्मचारियों का सफ़र सम्बन्धी व्यय। (ई) अन्य व्यक्तियों का निर्वाचन सम्बन्धी व्यय। (उ) छपाई, विज्ञापन, स्टेशनरी, डाक तार का व्यय, सभा आदि के वास्ते लिये हुए मकान का किराया। (ऊ) निर्वाचन सम्बन्धी अन्य विविध व्यय।

**निर्वाचक का सवारी खर्च देना**-किसी निर्वाचक को मत देने के लिए आने या जाने का, सवारी ख़र्च देने के लिए, किसी व्यक्ति को कुछ द्रव्य देना, या देने का वायदा करना, निर्वाचन-अपराध माना जाता है।

**किराये की सवारियों को भाड़े पर लेना**-किसी ऐसी किश्ती, गाड़ी या जानवर को निर्वाचन कार्य के लिए भाड़े पर लेना, या मांगना, जा साधारणतया किराये पर चलते हैं,

या किराये के लिए रहते हैं, निर्वाचन-अपराध माना जाता है।*

**शराब की दुकानों को किराये पर लेना**—कोई ऐसा मकान या कमरा या अन्य जगह निर्वाचकों की सभा या कमेटी के लिए किराये लेना या उपयोग करना, जहां सर्व साधारण को शराब बेची जाती हो, निर्वाचन-अपराध माना जाता है।

**मुद्रक या प्रकाशक के नाम के बिना, कोई सूचना प्रकाशित कराना**—निर्वाचन सम्बन्धी कोई ऐसी सूचना या इश्तहार आदि प्रकाशित कराना, जिस पर मुद्रक या प्रकाशक का नाम न हो, निर्वाचन-अपराध माना जाता है। ×

---

* उम्मेदवार अपने मित्र आदि दूसरे व्यक्ति की ऐसी सवारी मांग कर उपयोग कर सकता है, जो किराये पर न चलती हो, परन्तु शर्त यह है कि उसके लिए जो ख़र्च हो, (जैसे मोटर में तेल ख़र्च होता है) वह सवारी का मालिक ही दे। उम्मेदवार अपने एजंट आदि कर्मचारियों के लिए किराये की सवारियों का प्रबन्ध कर सकता है।

× उम्मेदवार के एजंट को चाहिए कि निर्वाचन सम्बन्धी सूचनाएँ या इश्तहार छपाने का काम, अपने मित्रों या मुलाहिज़े वालों से न करा कर, ऐसे ही व्यक्तियों द्वारा कराये जिनका पेशा छपाई का काम करना है। उसे यह भी चाहिए कि इस प्रकार की छपाई के ठीक ठीक बिल लेकर, उन्हें पूरी तरह चुका दे। सब हिसाब ऐसा रहना चाहिए कि उसके विषय में कोई शंका न हो सके।

**निर्वाचन सम्बन्धी दर्खास्तें**—निर्वाचन-अपराधों का वर्णन होचुका । उन अपराधों के करने वालों का निर्वाचन रद्द कराने या उन्हें दण्ड दिलाने के लिए, निर्धारित समय के अन्दर, दर्ख़ास्त दी जा सकती है। अब हम यह बतलाते हैं कि वह दर्खास्त कब और किसको देनी चाहिए, उसमें किन-किन बातों का उल्लेख रहना चाहिए, तथा उसके सम्बन्ध में अन्य क्या कार्रवाई करनी होती है।

व्यवस्थापक सभाओं के प्रत्येक उम्मेदवार के निर्वाचन-व्यय के हिसाब को, निर्वाचन-अफ़सर के पास भेजे जाने की बात ऊपर कही जा चुकी है। निर्वाचन-अफ़सर इस हिसाब मिलने की सूचना निर्वाचक संघ में करा देता है। जिस दिन निर्वाचन-अफ़सर को निर्वाचित उम्मेदवार का हिसाब मिलता है, उससे निर्धारित समय के भीतर, गवर्नर को, किसी निर्वाचित उम्मेदवार का निर्वाचन रद्द कराने की दर्ख़ास्त दी जा सकती है; (क) यदि सरकार द्वारा इस कार्य के लिए नियुक्त किसी अफ़सर को यह पता लगे कि निर्वाचन के समय रिश्वत-बाज़ी हुई या अनुचित प्रभाव डाला गया तो वह ऐसी दर्खास्त दे सकता है। (ख) यदि कोई उम्मेदवार या उसका एजंट रिश्वत देने, अनुचित प्रभाव डालने या झूठे नाम से कार्य कराने का दोषी ठहराया जाय तो दोषी ठहराये जाने के दिन से निर्धारित समय के अन्दर कोई उम्मेदवार या निर्वाचक उपर्युक्त प्रकार की दर्खास्त दे सकता है।

ऐसी दर्खास्त देने वाले व्यक्ति को, दर्खास्त के साथ एक निर्धारित रक़म जमा करनी होती है। परन्तु यदि दर्खास्त, प्रान्तीय सरकार से नियुक्त किसी अफ़सर द्वारा दी जाय तो इस प्रकार की कोई रक़म जमा करने की आवश्यकता नहीं। प्रत्येक दर्खास्त में, संक्षेप में, वे सब बातें होनी चाहिएँ जिनके आधार पर दर्खास्त देने वाला, मुक़द्दमा चलाना चाहता है। उस दर्खास्त के साथ एक सूची दी जानी चाहिए, जिसमें प्रत्येक ऐसे निर्वाचन-अपराध का पूरा ब्यौरा हो, जो वह अपने विपक्षी के विरुद्ध साबित करना चाहता है। इस सूची में यह भी बतलाया जाना चाहिए कि वह अपराध किस तारीख़ को, किस स्थान में हुआ, किसने और किसके विरुद्ध किया, और यदि वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध अपराध किया गया, निर्वाचक है तो उसका निर्वाचक नम्बर क्या है।

किसी निर्वाचन को रद्द किये जाने की दर्ख़ास्त नियमित रूप से मिल जाने पर, गवर्नर उसकी जांच के लिए एक कमीशन नियुक्त करता है। यह कमीशन गवर्नर द्वारा निर्दिष्ट किये हुए स्थान पर अपनी जाँच का कार्य आरम्भ कर देता है। कमीशन की जाँच में, विपक्षियों को अपने तईं निर्दोष साबित करने का यथेष्ट अवसर दिया जाता है, और यदि वे चाहें तो यह भी साबित कर सकते हैं कि दर्ख़ास्त देने वाला व्यक्ति निर्वाचन-अपराध का दोषी है। यदि कमीशन का यह निर्णय हो कि निर्वाचन के समय

कोई बड़ा निर्वाचन-अपराध किया गया है, या ऐसी दूषित कार्रवाई की गयी है जिसका चुनाव पर भारी असर पड़ा है, या कोई उम्मेदवारी का प्रस्ताव-पत्र, या किसी का निर्वाचन-पत्र अनियमित रूप से ले लिया गया है, या अस्वीकार कर दिया गया है, या कोई कार्रवाई निर्वाचन-नियमों के अनुसार नहीं हुई और उसका निर्वाचन पर बहुत प्रभाव पड़ा तो निर्वाचित उम्मेदवार का निर्वाचन रद्द कर दिया जाता है, और निर्वाचन दुबारा किये जाने की आज्ञा दी जाती है; या दर्ख़ास्त देने वाले व्यक्ति को ही, अगर वह उम्मेदवार हो, निर्वाचित उम्मेदवार समझे जाने की आज्ञा दी जाती है। *

भारतवर्ष में निर्वाचन सम्बन्धी दर्ख़ास्तें बहुत कम दी जाती जाती हैं। इसका एक मुख्य कारण यह है कि बहुधा आदमी निर्वाचन अपराध को होता जान लेने या देख लेने पर भी, यह सोचते हैं कि इसे क़ानूनी दृष्टि से साबित करना कठिन होगा, अदालत में बहुत ख़र्च करना होगा और परेशानी उठानी पड़ेगी। इसलिए वे उसके विषय में मुक़द्दमा चलाने या निर्वाचन सम्बन्धी दर्ख़ास्त देने का साहस नहीं कर सकते। व्यवस्थापक सभाओं

* ये बातें विशेषतया व्यवस्थापक सभाओं को लक्ष्य में रख कर लिखी गयी हैं। म्युनिसिपैलटियों और ज़िला-बोर्डों में भी कुछ-कुछ इसी प्रकार की व्यवस्था है; हां, कम परिणाम में, उदाहरणवत् उनके निर्वाचन सम्बन्धी दर्ख़ास्त देने वाले को अपेक्षाकृत बहुत कम रक़म जमा करनी होती है।

के निर्वाचन के सम्बन्ध में दर्ख़ास्त देने के साथ निर्धारित रक़म जमा की जाने की बात पहिले कही गयी है, उसके कारण भी बहुत-से आदमी, जो उसका आर्थिक भार नहीं उठा सकते, उपर्युक्त प्रकार की दर्ख़ास्तें देने में असमर्थ रहते हैं। इन विषयों में शीघ्र सुधार होना चाहिए। तभी इन दर्ख़ास्तों की संख्या कुछ विशेष रूप से बढ़ेगी, और, अधिक अपराधों को प्रकाश में लाया जा सकेगा; और तभी अपराधों की संख्या घटने से, निर्वाचन-कार्य अधिक निर्दोष होने में सहायता मिलेगी।

---

# * दसवाँ अध्याय *

## ❋ उपसंहार ❋

"निर्वाचकों को उचित शिक्षा देने का विषय बड़े महत्व का है।"

इस पुस्तक के पिछले अध्यायों में हम निर्वाचन सम्बन्धी विविध विषयों की आलोचना करते हुए तत्सम्बन्धी आदर्शों का भी दिग्दर्शन भी करा आये हैं। इस अध्याय में हम, एक ही स्थान पर इकट्ठे, कुछ मुख्य-मुख्य सुधार बतलाते हैं।

**मुख्य मुख्य सुधार**—भारतवर्ष में निर्वाचन सम्बन्धी निम्न लिखित सुधारों की विशेष आवश्यकता है:—

१—विशेष प्रतिनिधित्व ठीक नहीं।

२—जाति-गत निर्वाचक संघ न रहने चाहिएँ।

३—उम्मेदवार उच्च आदर्श वाले व्यक्ति हों; यदि कोई व्यक्ति स्वयं उम्मेदवार खड़ा न हो तो बहुत उत्तम है।

४—निर्वाचकों को शिक्षित करने का विशेष प्रयत्न होना चाहिए।

५—भारतवर्ष में निर्वाचन-अधिकार बहुत कम जनता को है, यहां बालिग मताधिकार की आवश्यकता है।

इन में से अन्य बातों के विषय में तो पहिले कहा जाचुका है, यहां निर्वाचकों की शिक्षा के बारे में ही कुछ वक्तव्य है।

**निर्वाचकों को शिक्षित करने का विशेष प्रयत्न होना चाहिए**—इस ओर अभी बहुत कम ध्यान दिया गया है। जब निर्वाचन का समय आता है तो जिन व्यक्तियों का (उम्मेदवार या उसके एजंट या मित्र आदि होने की हैसियत से, या किसी अन्य स्वार्थ से ) निर्वाचन से घनिष्ट सम्बन्ध होता है, वे सूचनाएँ या लेख छपवाते, भाषण दिलाते, तथा अन्य आन्दोलन करते हैं। परन्तु जन-साधारण में इस विषय के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए कुछ विशेष प्रयत्न नहीं किया जाता। इस विषय की जानकारी के लिए पाठकों को सामयिक पत्र पत्रिकाओं के कुछ लेखों पर सन्तोष करना पड़ता है, उल्लेखनीय महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रायः अभाव ही है। * निर्वाचन सम्बन्धी शिक्षा का कार्य कुछ व्यक्तियों और संस्थाओं को अपने ऊपर विशेष रूप से लेना चाहिए, वे बारहों महीने लेखों, भाषणों, ट्रेक्टों तथा ग्रन्थों द्वारा इस कार्य को करती रहें। अच्छा हो, प्रत्येक नगर में म्युनिसिपल निर्वाचक संघ, और ज़िले में ज़िला-निर्वाचक संघ की स्थापना हो। इन संघों का उद्देश्य अपने-अपने क्षेत्र के निर्वाचकों

* इसकी आंशिक पूर्ति के लिए हमने यह पुस्तक प्रकाशित की है। आशा है, राजनीति-प्रेमी सज्जनों की सहानुभूति होगी, और वे इस रचना के प्रचार में सहयोग प्रदान करेंगे।

में नागरिक उत्तरायित्व की भावना का प्रचार करना, तथा नागरिक समस्याओं और आवश्यकताओं को जातिगत या साम्प्रदायिक दृष्टि से न देखकर विशुद्ध नागरिक दृष्टिकोण रखने की प्रवृत्ति बढ़ाना, होना चाहिए। कुछ वर्षों तक ऐसा उपयोग निरन्तर होते रहने से ही हमारे यहां नागरिक जागृति यथेष्ट मात्रा में हो सकेगी।

**विशेष वक्तव्य**--संसार की अन्य अनेक प्रथाओं की भांति निर्वाचन प्रणाली भी पूर्ण नहीं कही जा सकती। इसमें कुछ गुण हैं तो कुछ दोष भी हैं। जिन देशों में जनता बहुत शिक्षित है, तथा उन्नत मानी जाती है, और जहाँ यह प्रणाली बहुत समय से प्रचलित है, वहां भी निर्वाचन आन्दोलन में बहुत से दोष देखने में आते हैं, फिर भारतवर्ष में यदि इस विषय की कुछ शिकायतें हों तो क्या आश्चर्य है ! यहां पर तो केवल दस फ़ी-सदी स्त्री पुरुष ही शिक्षित हैं, और इस प्रणाली को कुछ विशेष रूप से प्रचलित हुए केवल बीस वर्ष ही हुए हैं। अस्तु, विचारशील सज्जनों का यह कर्तव्य है कि वे प्रत्येक प्रणाली के गुणों की रक्षा तथा वृद्धि करने के लिए, ऐसे सुधार करते रहें जिससे उस प्रणाली में विकार न बढ़ने पावें और वह अधिकाधिक उपयोगी हो।

* शुभम् *

# परिशिष्ट

## म्युनिसिपल मतदाता की समस्या*

"नागरिकता या राष्ट्रीयता की सब से सच्ची जांच म्युनिसिपल और ज़िला-बोर्डों के चुनावों और कार्यों में होती है। कौंसिल और एसेम्बली के चुनावों में मतदाताओं और उम्मेदवारों को उतने निकट और पतनोन्मुख करने वाले प्रलोभनों का सामना नहीं करना पड़ता, जितना म्युनिसिपल बोर्ड या ज़िला-बोर्ड के चुनावों में करना पड़ता है।"

—देवीदत्त मिश्र, बी० ए०

भगवन! मैं इस बात के लिए कितना तरसता रहता हूं कि मेरे इस प्यारे पूज्य नगर के लिए काफ़ी संख्या में स्वयं-सेवक मिल सकें जो इसके धार्मिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी आदि विविध क्षेत्रों में सेवा-भाव से कार्य करते हुए अपना जन्म सफल करें, और साथ ही इस पुण्य भूमि का उद्धार करें, इसे अन्य उत्तम नगरों की श्रेणी में लायें।

**सच्चे सेवकों की कमी**—मैं जानता हूं कि भारतीय राष्ट्र की पुकार पर यहां कितने ही आदमियों तथा कुछ महिलाओं ने भी

---

* श्री० केला जी के, वृन्दावन म्युनिसिपल बोर्ड के निर्वाचन के अवसर पर लिखे हुए दो लेखों के आधार पर।

नाना प्रकार के शारीरिक और आर्थिक कष्ट सहे, तथापि यहां अनेक अभागे ऐसे रहे हैं, जिन्हें माता की वह पुकार उनके आराम में विघ्न डालने वाली प्रतीत हुई। उन्होंने उसे न सुना, न सुना। वे बहरे ही बने रहे। भगवन! तेरी लीला अपरम्पार है। आज मैं क्या देख रहा हूं! यह स्वप्न है या सत्य? मरूभूमि में मानो बाढ़ आरही है। बहरे आदमी सुन रहे हैं। जो आदमी सेवा का मतलब निज स्वार्थ साधन समझते थे, जो दलितों और दीन-दुखियों की ओर कृपा-दृष्टि करना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते थे, वे आज म्युनिसिपल चुनाव का अवसर उपस्थित हो जाने पर जन-साधारण के सेवकों में भरती होने के लिए दौड़-धूप कर रहे हैं। उनमें आपस में प्रतियोगिता लगी है। इसमें क्या रहस्य है! हमारे नगर में तीन 'वार्ड' हैं। नियम कहता है कि यहां नौ प्रतिनिधि होने चाहिएं। यदि वास्तव में स्वार्थ-त्याग करने और मातृभूमि के लिए बलिदान होने की कसौटी होती, तो यह नौ की संख्या भी जैसे-तैसे पूरी हो सकती। पर अब तो बात ही दूसरी है। निर्धारित संख्या से दूने-तिगुने व्यक्ति आ पहुंचे हैं। "मान न मान, मैं तेरा मेहमान।" हिन्दी में कहावत है—"तीन बुलाये तेरह आये।" भला उस ग़रीब की क्या दशा होगी, जिसके यहां केवल तीन-चार आदमियों के रहने की व्यवस्था हो और इससे तिगुने-चौगुने मेहमान पहुंच जायँ।

**मेरी समस्या**—मेरे लिए यह एक विकट समस्या है कि मैं

योग्य-अयोग्य का निर्णय कर किसे मत दूं। इन भले आदमियों ने, इतनी बड़ी संख्या में उम्मेदवार बनने से भी अधिक, मुझे इस बात से चक्कर में डाल दिया है कि सभी अपना गुण-गान करने में मानो बृहस्पति बने हुए हैं। और मौक़ों पर तो ये आत्म-स्तुति की निन्दा करते हैं, पर इस समय तो इसे दुर्गुण की जगह गुण ही मान रहे हैं। ये शील-संकोच को छोड़ कर पूर्णरूप से उसमें व्यस्त हैं, और जहां वे किसी कारण से स्वयं मियां-मिट्ठू होने से परहेज़ करते हैं, वहां अपने दलालों या एजंटों से उस कमी की भली भांति पूर्ति करा देते हैं। ऐसी स्थिति में उनका निर्वाचन करने में, मेरे सामने वैसा ही धर्म-संकट उपस्थित होगया है जैसा दमयन्ती को अपना पति चुनने के समय हुआ था। नहीं, मेरा संकट तो कुछ और भी अधिक है। यहां तो 'नगर-पिता' बनने की हविस वाला, प्रत्येक उम्मेदवार व्यक्तिगत बातों की दुहाई देता है। मुझ पर समय समय पर, जान में या अनजान में किये हुए, छोटे या बड़े अहसानों की बारबार याद दिलाता है, और सब के सब मेहरबान मुझसे इसी समय इसी रूप में अपना कर्ज़ा वसूल करना चाहते हैं कि मैं उन्हें अपना नगर-प्रतिनिधि मान लूं।

**अनेक उम्मेदवार**—एक महाशय हैं, ये कभी-कभी राह चलते या मेरे घर आकर भी कुशल-क्षेम पूछ लेते हैं, सहानुभूति की दो बातें कह जाते हैं। बड़े विनम्र और मृदुभाषी हैं। हर

समय यही कहा करते हैं, "अपने इस सेवक से भी कुछ काम लिया करें, आपके लिए जी-जान हाज़िर हैं।" आज तो इनका मतलब ही ठहरा। इनकी विनम्रता और शिष्टाचार का क्या ठिकाना! मैं इस पर मुग्ध हूं। पर क्या ये नगर की कुछ सेवा करते रहे हैं; क्या मैं इन्हें अपना बहुमूल्य मत (वोट) दे दूं? ये तो मुझे वचन-वद्ध करने पर ही तुले हैं।

दूसरे महाशय हैं, एक अच्छे चिकित्सक। ये धनी लोगों से प्राप्त शुल्क और पुरष्कार आदि पर अपनी ज़िन्दगी मज़े से व्यतीत करते हैं, और कभी-कभी निर्धनों का भी इनसे कुछ भला हो जाता है। किसी से फ़ीस में कमी या माफ़ी कर देते हैं। किसी को दवाई बिना मूल्य देकर अपना चिर ऋणी बना लेते हैं। मैं भी इनकी कृपा-दृष्टि का पात्र रहा हूँ, पर क्या मैं आज म्यूनिसिपैलटी में इनकी उपयोगिता अनुपयोगिता का विचार न कर, केवल अपनी कृतज्ञता सूचित करने के लिए ही इन्हें अपना मत प्रदान कर डालूं।

तीसरे महाशय एक बड़े व्यापारी हैं। इनका नगर के कितने छोटे-मोटे व्यापारियों से सम्बन्ध है। मुझे भी कभी कभी इनकी सलाह मशवरे से किसी चीज़ में दो पैसे का नफ़ा हो जाता है। आज ये चाहते हैं कि मैं इनका लिहाज़ करूं, और इन्हें आगामी चार वर्ष के लिए नगर का भाग्य-विधाता बनने में सहायता दूं। इनकी यह मांग कहां तक उचित है?

चौथे महाशय एक धनी सज्जन हैं, खूब आमदनी है। समय-समय पर ऐसे भी काम करते रहते हैं, जिनसे इनकी धार्मिक भावना की खूब विज्ञप्ति और प्रशंसा होती है। राष्ट्रीय कार्य में सहायता करना पसन्द नहीं करते। आज मेरे सामने यह समस्या है कि इन्हें मत देकर इनसे आशा बनाये रक्खूं या उस पर तिलांजली दूं।

**कठिन कार्य**--कहां तक गिनाऊं! किस-किस की बात कहूँ? किसी का अनादर नहीं करना चाहता, सभी मेरे लिए अच्छे हैं। नगर में रहता हूँ तो सभी से थोड़ा-बहुत काम पड़ता है और इस दृष्टि से मैं सभी का कृतज्ञ हूँ। परन्तु प्रश्न तो यह है कि इस कृतज्ञता को सूचित कराने का जो ढंग इन लोगों ने इख्तियार किया है, उसे मैं किस प्रकार अमल में लाऊँ। ये भले आदमी इतनी बड़ी संख्या में उम्मेदवार न बनते तो मेरे लिए यह कठिन समस्या पैदा न होती, पर, इन्हें मेरी कुछ फिक्र कैसे हो सकती है। ये अपनी धुन में थे, किसी तरह पांच सवारों में हमारी भी गिनती हो जाय, मुहूर्त देख कर, और कुछ बे-हिसाब ही ये अपने भाग्य की परीक्षा के लिए आ डटे हैं। मैं क्या करूं!

अपनी दशा का कैसे वर्णन करूं! जनता के सेवक बनने वाले इन उम्मेदवारों के मारे नाक में दम है। कभी एक आता है, कभी दूसरा। साधारण शिष्टाचार के नाते अपना काम छोड़कर दो घड़ी उनसे बातें करना जरूरी होता है। यदि बातें न कीजायँ

तो वे लोग मुझे घमंडी और न जाने क्या-क्या करने लग जायँ। परन्तु बातें भी कीजायँ तो कहां तक। एक गया, कुछ देर पीछे दूसरा आया। फिर तीसरे का नम्बर है। तांता बंधा ही रहता है। एक उम्मेदवार कई--कई चक्कर लगाता है; जब वह स्वयं नहीं आता तो उसका एजंट आपहुँचता है। न दिन में चैन, न रात को।

**तरह-तरह के दबाव**—ये लोग मुझ पर अनेक प्रकार से दबाव डालते हैं। कोई अपने सम्प्रदाय या आचार्यत्व की दुहाई देता है। कोई मुझे मित्रता तथा जाति-बिरादरी के नाम पर अपील करता है। मैं इन सब बातों को सुनते-सुनते उकता गया। पर उनके सिर पर तो मेम्बरी का भूत सवार है। उन्होंने इन दिनों अपना खाना-पीना तक हराम कर रखा है। अब तो गली, बाज़ार, और वोटरों के घर-घर घूमना ही उनका पूजा-पाठ हैं। नित्य इस स्वाध्याय में लगे रहते हैं कि अमुक मतदाता पर उसके किस भाई बन्धु, मित्र, गुरु, आचार्य या सरकारी कर्मचारी द्वारा किस-किस प्रकार से दबाव डाला जा सकता है जो हो, इन उम्मेदवारों ने मुझे खूब ही परेशान कर रक्खा है। अब मैं सोचूँगा कि ऐसी परिस्थिति में अपने कठोर कर्तव्य का किस भांति पालन करूं, अपने इस मत-प्रदान सम्बन्धी नागरिक अधिकार का किस तरह न्याय और ईमानदारी से उपयोग करूं।

म्युनिसिपल चुनाव का प्रश्न हमारी परीक्षा के लिए चार

साल में एक बार आता है। यदि हम असावधान रहे तो चार बर्ष तक उसका दंड भुगतते या प्रायश्चित करते रहना होता है। अतः हमें सावधानी पूर्वक, गम्भीरता से काम लेना चाहिए। यदि हम साहस और आत्म-बल का परिचय न देंगे तो हमारी आंखों के सामने नागरिक हितों का खून होगा। उसके दोषी हम होंगे।

**उम्मेदवारों से प्रश्न**—उम्मेदवार और उनके एजंट हमें तरह-तरह से बहकावे में डालने का प्रयत्न करते हैं। हमें किसी के धोखे में न आना चाहिए। हमें खूब याद रखना चाहिए कि हमारा मत (वोट) हमारी बहुमूल्य सम्पत्ति है; उसे बिना बिचारे या किसी के दबाव से यों ही फेंक देना उचित नहीं है। हमें प्रत्येक उम्मेदवार से निर्भयता-पूर्वक सवाल-जवाब करके अपने मन का पूरा समाधान कर लेने पर ही, उसे अपना वोट देने का निश्चय करना चाहिए।

**अब तक क्या किया ?**— मैं प्रत्येक उम्मेदवार से कहूँगा, "आप मेम्बर होकर नगर का हित करेंगे, यह हम तभी मान सकते हैं जब हमें यह विश्वास होजाय कि आपने पहिले भी कुछ सार्वजनिक सेवा की है। क्या आपने अपने स्वार्थ को छोड़कर, कोई ऐसा कार्य किया है जिससे आपको शारीरिक कष्ट या आर्थिक हानि उठानी पड़ी है ? क्या आपने राष्ट्रीय अथवा नागरिक सेवा करके दीन-दुखी भारतमाता का कष्ट

निवारण करने का कोई सच्चा और निष्कपट प्रयत्न किया है ? स्वदेशी को प्रोत्साहन देकर अपने निर्धन और बेकार बन्धुओं की सुधि ली है ?

**भविष्य में क्या करेंगे ?**--मैं उम्मेदवार से पूछूँगा कि बोर्ड में जाने से आपका उद्देश्य क्या है ? मान लीजिए कि आप बोर्ड के मेम्बर बन जायँ तो आप वहाँ क्या लक्ष और कार्य-क्रम रखकर अपनी नीति निर्धारित करेंगे ? यदि आपके सामने कोई कार्य-क्रम ही नहीं है, तो आप बोर्ड में जाते ही क्यों हैं ? क्यों नहीं, किसी दूसरे योग्य और उत्साही व्यक्ति के लिए रास्ता साफ़ कर देते ? आप मुझे गोल-मोल शब्दों में यह न कहदें कि मैं बोर्ड में आप लोगों की सेवा करूंगा; कृपया स्पष्ट बातें करिए। कम से कम जो बातें इस समय हमारे सामने हैं उन पर अपनी निश्चित सम्मति दीजिए, तब हम भी आपको अपना मत ( वोट ) देने का निश्चय करेंगे।

**चेयरमैन कैसा चुनेंगे ?**—" मैं यह नहीं पूछता कि आप चेयरमैन किस आदमी को चुनेंगे, उसका नाम राम हो या श्याम हो, इससे मुझे कुछ मतलब नहीं। वह वैश्य हो या ब्राह्मण हो, बङ्गाली हो या संयुक्त प्रान्तीय हो, यह भी कोई विचार की बात नहीं। उसकी जाति या सम्प्रदाय कुछ ही हो। सोचना यह है कि नागरिक विषयों में वह कहाँ तक अनुराग रखता है, परिश्रम से कार्य करता है, उसके व्यवहार और आदर्श का दूसरों पर

क्या प्रभाव पड़ता है, वह राष्ट्रीय विचारों का है या नहीं? वह ऐसा तो नहीं है कि सब काम नीचे के कर्मचारियों और अहलकारों के भरोसे छोड़ दे, जिससे बोर्ड को स्थानीय स्वराज्य की जगह स्थानीय नौकरशाही कहा जा सके। उसने पहिले नगर या देश की सेवा कैसी और कितनी की है, और कितने कष्ट उठाये हैं।"

**बोर्ड का झण्डा तो नीचा न करेंगे?**—"इस समय बोर्ड पर राष्ट्रीय झण्डा फहरा रहा है, इसे बोर्ड ने अपना लिया है, इसे जारी रखने या न रखने को मैं नगर के मानापमान का प्रश्न मानता हूँ, क्या उच्च अधिकारियों का रुख देखकर, अथवा सरकारी मेम्बरों के भावों का विचार करके आप इस झण्डे की रक्षा करने से अपना हाथ तो न खींच लेंगे? अथवा, सबका कोप-भाजन बन कर भी नगर और राष्ट्र की मान मर्यादा की रक्षा करेंगे?"

**स्वदेशी को प्रोत्साहन**—"आप अपने को जनता का सेवक कहते हैं; आशा है, आपको अपने बन्धुओं की निर्धनता की हर समय चिन्ता रहती होगी। क्या आप ग़रीब भाइयों के कष्ट निवारण करने के लिए कुछ उपाय काम में लायेंगे? वर्तमान बोर्ड के समय जो प्राइमरी स्कूल में दस्तकारी की शिक्षा की व्यवस्था आरम्भ हुई है, क्या आप इसका क्रम आगे बढ़ायेंगे? इस समय यहाँ आने वाले माल में से खद्दर पर चुंगी

माफ़ है, क्या आप अन्य स्वदेशी सामान पर चुंगी कम करने के विषय मे कुछ गहरा विचार करेंगे ? क्या आप स्कूलों के लड़कों में, मास्टरों में तथा अन्य अहलकारों में स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग बढ़ाने की विविध योजनाओं को कार्य में परिणत करके अपने स्वदेश-प्रेम का, और उन वस्तुओं को बनाने वालों केप्रति वास्तविक सहानुभूति का, परिचय देंगे ? अथवा, इसमें अधिकारियों के रुख की आड़ लेकर, अपनी निर्बलता प्रमाणित करेंगे।"

**राष्ट्रीय भावों की वृद्धि**—मैं प्रत्येक उम्मेदवार से यह भी कहूँगा, "आप राष्ट्रीय भावों के नाम से चौंकते तो नहीं हैं ? इंगलैंड, जर्मनी आदि समस्त स्वतन्त्र देशों में विद्यार्थियों को राष्ट्रीय गान सिखाया जाता है। इंगलैंड के स्कूलों में बच्चे निर्भय होकर गाते हैं।

Rule Britannia,
Britannia rules the waves.
Britons never shall be slaves.
बृटेनिया ( इंगलैंड ) शासन कर,
बृटेनिया समुद्र पर शासन करता है,
बृटन ( अंगरेज़ ) कभी गुलाम न होंगे ?

क्या हमारे बच्चे, हमारे भावी नागरिक, प्राइमरी और मिडिल स्कूलों के लड़के, निर्भयता-पूर्वक वन्देमातरम् गान गा सकेंगे ? क्या आप इस बात का समर्थन करेंगे कि विद्यार्थी लुक-छिप कर नहीं, खुले आम यह कहा करें कि—

क्यों कर भला हो मुमकिन, तकलीफ़ ना उठावें,
बच्चे सपूत जो हों, बीमार माँ की ख़ातिर ।
सौ बार गर जनम हो तो भी यही धरम हो,
मर जायँगे मरेंगे, हिंदोस्तां की ख़ातिर ।

या, यह कि—

नसों में रक्त भारत का, उदर में अन्न भारत का ।
करों में कर्म भारत का, हृदय में भान भारत का ॥

जब तक कि विद्यार्थियों की बाल्यावस्था में देश-प्रेम और राष्ट्र सेवा के भावों को हृदय में स्थान न दिया जाय, तब तक बड़े होने पर उनसे सुयोग्य नागरिक होने की आशा नहीं की जा सकती ।"

**एक बात और**—मैं प्रत्येक उम्मेदवार से उपर्युक्त तथा इस प्रकार के अन्य प्रश्न करूंगा । पर मुझे एक बात याद रखनी होगी । मैं उम्मेदवारों से केवल प्रश्नों का उत्तर लेकर ही न रह जाऊंगा । मैं जानता हूं कि कुछ उम्मेदवार मेम्बरी की धुन में इस समय सच्ची-झूठी सब तरह की प्रतिज्ञाएं कर देंगे; वे जैसे-भी बने, मेरे श्रद्धा-भाजन बनने का प्रयत्न करेंगे। पर मैं

अपनी समझ का उपयोग करके देखूंगा कि उन लोगों की बात में कितना सार है।

निदान, सब बातों को बिचारे बिना मैं किसी उम्मेदवार को अपना मत ( 'वोट' ) न दूंगा। मेरा मत ऐसा होना चाहिए जो किसी भी मूल्य से ख़रीदा न जा सके। नागरिक विषयों में भाई-चारे का, मित्रता या दोस्ती का, या सम्प्रदाय आदि का विचार रखना नितान्त अनुचित है। ये बातें व्यक्तिगत विषयों के लिए हैं। मुझे अपना मत नगर के हित की दृष्टि से ही देना चाहिए, इस सिद्धान्त को समझकर मुझे अपना कर्तव्य पालन करना है। परमात्मा इसके लिए मुझे यथेष्ट बल दे, निर्भयता और साहस दे, जिससे मैं नागरिकता की कसौटी पर खरा उतरूँ।

* शुभम् *

# भारतीय ग्रन्थमाला, बृन्दावन

इस ग्रन्थमाला की स्थापना सन् १६१५ ई० में हुई । इसकी कई पुस्तकें राष्ट्रीय एवं सरकारी शिक्षा संस्थाओं में स्वीकृत और प्रचलित हैं, तथा कुछ पर शिक्षा-विभागों तथा साहित्य-संस्थाओं द्वारा पुरस्कार मिल चुका है।

## कुछ सम्मतियाँ

'स्वराज्य चाहने वालों में कितने ही शास्त्री, पण्डित और आचार्य तक वे बातें नहीं जानते, जिन पर आपने इतनी पुस्तकें लिख कर प्रकाशित कर दीं।' —महावीरप्रसाद द्विवेदी

*It is the duty of every Hindi-knowing citizen to help the author, in the pioneer work that he is doing* —The Education.

## माला की पुस्तकें

१—भारतीय शासन ( Indian Administration )- "राजनैतिक ज्ञान के लिये आइने का काम देने वाली" तथा "विद्यार्थियों, पत्र-सम्पादकों और पाठकों के बड़े काम की" । सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार संशोधित और परिवर्द्धित । आलोचना सहित । सङ्घ शासन का विवेचन । देशी राज्यों पर यथेष्ट प्रकाश । सातवां संस्करण । मूल्य सवा रुपया ।

२—भारतीय विद्यार्थी विनोद—भाषा, विज्ञान, भूगोल, इतिहास गणित, अर्थ-शास्त्र आदि दस पाठ्य विषयों की आलोचना । मातृ-भूमि जीवन का लक्ष्य आदि ग्यारह विषयों का विवेचन । "नये ढङ्ग की रचना।" तीसरा संस्करण । मूल्य ॥=)

३—राष्ट्र-निर्माण—राष्ट्र-निर्माण के साधन, राष्ट्र-भाषा, राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रीय पताका, और स्वाधीनता, आदि विषयों पर गम्भीर विचार किया गया है। तीसरा संस्करण छप रहा है। मूल्य ॥।=)

४—हिन्दी में अर्थ-शास्त्र और राजनीति साहित्य—इसमें अर्थ शास्त्र की १४१ और राजनीति की २११ पुस्तकों का परिचय दिया

गया है, तथा इस साहित्य के अभाव दर्शाये गये हैं। लेखकों और पुस्तकालयों के लिये यह पथ प्रदर्शक है। लेखक—प्रोफेसर दयाशंकर दुबे एम. ए. और श्री० केलाजी। मूल्य ।।।)

५—भारतीय सहकारिता आन्दोलन—ग्राम-सुधार और ग्राम-संगठन की क्रियात्मक बातें। प्रान्तीय सहकारी विभाग द्वारा प्रशंसित और प्रोत्साहित। ले०—प्रोफेसर शंकरसहायजी सकसेना एम. ए.। मूल्य २)

६—भारतीय जागृति ( Indian Awakening ) - गत सौ वर्षों के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक आदि इतिहास का सुन्दर विवेचन। दूसरा संस्करण। मूल्य १।)

७—विश्व वेदना—मज़दूर, किसान, लेखक, बच्चे, विधवाएँ, वेश्याएँ, क़ैदी और अनाथ आदि अपनी-अपनी वेदना बता रहे हैं, उनकी व्यथा सुनिए और उसे निवारण कीजिये। मूल्य ।।।=)

८—भारतीय चिन्तन—इसके कुछ लेख हैं—प्रेम का शासन, साम्राज्यों का जीवन मरण, प्यारी मां, स्वराज्य का मूल्य, मेरे ३० मिनट, राजनीतिक भूल भुलैयां, तीर्थों में आत्मिक पतन, धर्म युद्ध, राष्ट्र की वेदी पर, मौत की तैयारी, आदि। मूल्य ।।।=)

९—भारतीय राजस्व ( Indian Finance ) भारतवर्ष में सरकार प्रति वर्ष दो सौ करोड़ रुपये से अधिक की आय किन-किन कामों में ख़र्च करती है, इसमें क्या सुधार होना चाहिये। मूल्य ।।।=)

१०—निर्वाचन पद्धति—मताधिकार का महत्व, मत गणना प्रणाली, निर्वाचकों के कर्तव्य, उम्मेदवार का उत्तरदायित्व, आदि का विवेचन। प्रत्येक मतदाता के लिये अत्युपयोगी। लेखक प्रोफेसर दुबे और श्री० केलाजी। दूसरा संस्करण। मूल्य ।।–)

११—बालब्रह्मचारिणी कुन्ती देवी—कन्याओं और महिलाओं के लिए बहुत उपयोगी जीवन चरित्र। लगभग २५० पृष्ट और विविध कार के १२ चित्र। मूल्य १।।)

१२—राजनीति शब्दावली—अंगरेजी-हिन्दी पर्यायवाची शब्दों का अत्युपयोगी संग्रह। राजनीति-साहित्य के पाठकों एवं लेखकों के

बड़े काम की। दूसरा परिवर्द्धित संस्करण छप रहा है। मूल्य ।॥)

१३—नागरिक शिक्षा ( Elementary Civics )—इसमें सरकार के कार्यों–सेना, पुलिस, न्याय, जेल, कृषि, उद्योग-धन्धे, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विषयों का सरल भाषा में विचार। दूसरा संस्करण; मूल्य ॥=)

१४—ब्रिटिश साम्राज्य शासन ( Constitution of the British Empire )—इङ्गलैण्ड की, तथा उसके साम्राज्य के स्वतन्त्र तथा परतन्त्र उपनिवेशों एवं अन्य भागों की शासन पद्धति का सरल, सुबोध वर्णन। लेखक प्रोफेसर दुबे और श्री० केलाजी। मूल्य ॥।=)

१५—श्रद्धाञ्जलि—"यह श्रद्धा के पथ में पूर्व और पश्चिम, नवीन और प्राचीन, स्त्री और पुरुष, धर्मी और अधर्मी आदि सब की अर्चना कर रही है। वीर-पूजा में प्रेरणा, उत्साह और प्राण की मांग की गई है।" इसमें २१ महापुरुषों के दर्शन हैं। मूल्य ॥।=)

१६—भारतीय नागरिक—इसमें भारतीय नागरिकों के अधिकार और कर्तव्यों के अतिरिक्त, किसानों, ज़मींदारों, लेखकों, सम्पादकों, विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा महिलाओं और दलित जाति वालों आदि को देशोन्नति के लिये दी जाने वाली सुविधाएँ बतलाई गई हैं। मूल्य ॥)

१७—भव्य विभूतियाँ—महाराणा प्रताप, शिवाजी, छत्रसाल, गुरु गोविन्दसिंह, लक्ष्मी बाई, महाराणा सांगा, पन्ना धाय, दुर्गादास और जयमल फत्ता के मनोहर, शिक्षाप्रद वृत्तान्त। लेखक—प्रोफेसर शङ्करसहाय सकसेना एम० ए०। मूल्य ॥=)

१८—अर्थ शास्त्र शब्दावली ( Economic Terms )—अर्थ शास्त्र के लेखकों और विद्यार्थियों के लिए, बड़े परिश्रम से तैयार किया हुआ आर्थिक शब्दों का अंग्रेजी–हिन्दी सङ्कलन। लेखक—सर्वश्री दुबे, अग्रवाल और केलाजी। मूल्य ॥।)

१९—कौटिल्य के आर्थिक विचार—अपने समाज-शास्त्र के ज्ञान से जर्मनी, फ्रांस आदि देशों में भारतवर्ष का मस्तक ऊँचा करने वाले प्राचीन आचार्य कौटिल्य ( चाणक्य ) के आर्थिक विचार अध्ययन

और मनन करने की वस्तु हैं। उनका आधुनिक पद्धति से विवेचन। मूल्य ॥।=)

२०—अपराध चिकित्सा— (जेल, कालापानी और फांसी!) "प्रत्येक सचेत हिन्दी प्रेमी को, जिसके हृदय में अपने राष्ट्र तथा मानव समाज के भविष्य के निर्माण में क्रियात्मक तथा विचार-पूर्ण भाग लेने की आकांक्षा हो, इस पुस्तक को अवश्य ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिये।" मूल्य १॥)

२१—साहित्य की झाँकी—भक्ति काव्य और नाटक आदि पर गम्भीर समालोचनात्मक विचार। ले०-श्री सत्येन्द्रजी एम० ए०। मूल्य ।॥)

२२—भारतीय अर्थ सास्त्र—धन की उत्पत्ति, उपभोग, विनिमय, व्यापार और वितरण का भारतीय दृष्टि से सम्यग् विवेचन। दूसरा संस्करण। मूल्य २॥)

## अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें

सरल भारतीय शासन—भारतवर्ष की नवीन शासन पद्धति। दूसरा संस्करण। मूल्य ॥)

नागरिक शास्त्र (Citizenship)—नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों का विशद विवेचन। मूल्य सजिल्द १॥।)

भारतीय राज्य शासन—मध्यप्रान्त की दसवीं, ग्यारहवीं श्रेणियों के लिये प्रारम्भिक इतिहास की पाठ्य पुस्तक। मूल्य ॥।)

नागरिक ज्ञान (Civics)—मध्यप्रान्त की नवीं दसवीं और ग्यारहवीं श्रेणियों के लिये 'सीविक्स' की पाठ्य पुस्तक। मूल्य १)

धन की उत्पत्ति—अर्थ शास्त्र का मूल विषय। लेखक—प्रोफेसर दयाशंकर दुबे एम० ए० और श्री० केलाजी। मूल्य १।)

(जिन पुस्तकों के साथ लेखक का नाम नहीं दिया गया है, वे श्री० भगवानदासजी केला की कृतियाँ हैं।)

व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन।

J. P. WORKS, MUTTRA.